Con. 3. VIII-18.49
320

अंक 8
संख्या 18

बुधवार,
8 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप
[अनुच्छेद 204 से 206, 90 से 92 पर विचार] ...1067-1127

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 8 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः आठ बजे, अध्यक्ष महोदय माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं जान सकता हूं कि कल सभा की बैठक हो रही है या नहीं?

***अध्यक्षः** मेरे विचार से कल सार्वजनिक छुट्टी है।

***श्री बी. दासः** चूंकि मैं गणराज्यवादी हूं इसलिये मैं इंग्लिस्तान के सम्राट के जन्म दिवस की छुट्टी नहीं चाहता।

***अध्यक्षः** आपको इसकी स्वतंत्रता है कि आप किसी जनसमारोह में भाग न लें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** क्या हम कल की छुट्टी के एवज में शनिवार को कार्य कर रहे हैं?

***अध्यक्षः** यदि सभा को कोई आपत्ति नहीं है तो मुझे भी कोई आपत्ति नहीं है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): शनिवार को समितियों की बैठकें हैं।

माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा (बिहार : जनरल): हम शनिवार के लिये कई कार्य निश्चित कर चुके हैं।

***अध्यक्षः** यह प्रतीत होता है कि सदस्य शनिवार को समवेत होने के लिये तैयार नहीं हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** यह स्मरण रखना चाहिये कि करदाता को इस सभा के प्रत्येक सदस्य को प्रत्येक दिन के लिये 85 रु. देने पड़ते हैं।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यदि हम शनिवार को समवेत होंगे तो सम्राट यह अनुभव करेंगे कि हमने उन्हें चकमा दिया है।

अनुच्छेद 204 (*जारी*)

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 204 पर विचार-विमर्श करेंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, में अनुच्छेद 204 के सम्बन्ध में एक संशोधन उपस्थित करना चाहता हूं। मैंने यह कहा था कि मैं स्थिति पर

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

विचार करूंगा। मैं स्थिति पर विचार कर चुका हूं और इस सम्बन्ध में एक संशोधन उपस्थित करना चाहता हूं। श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2674 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 204 के स्थान में निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:
>
> '204. Transfer of certain cases to High Court—If the High Court is satisfied that a case pending in a court subordinate to it involves a substantial question of law as to the interpretation of this Constitution the determination of which is necessary for the disposal of the case, it shall withdraw the case and may—
>
> (a) either dispose of the case itself, or
>
> (b) determine the said question of law and return the case to the court from which the case has been so withdrawn together with a copy of its judgement on such question, and the said court shall on receipt thereof proceed to dispose of the case in conformity with such judgement.
>
> (204 विशेष मामलों का उच्च न्यायालय को हस्तान्तरण—यदि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि उसके अधीन न्यायालय में लम्बित किसी मामले में इस संविधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, जिसका निर्धारित होना मामले को निबटाने के लिये आवश्यक है, तो वह उस मामले को अपने पास मंगा लेगा तथा—
>
> (क) या तो मामले को स्वयं निबटा सकेगा; या
>
> (ख) उक्त विधि-प्रश्न का निर्धारण कर सकेगा तथा ऐसे प्रश्न पर अपने निर्णय की प्रतिलिपि सहित उस मामले को उस न्यायालय को, जिससे मामला इस प्रकार मंगा लिया गया है, लौटा सकेगा तथा उसके प्राप्त होने पर उक्त न्यायालय ऐसे निर्णय का अनुसरण करते हुए उस मामले को निबटाने के लिये आगे कार्यवाही करेगा।)

संशोधन इस प्रकार है। श्रीमान्, यदि आप कहें तो मैं इसके सम्बन्ध में कुछ कहूंगा किन्तु मैं दो बार नहीं बोलना चाहता और अन्त में ही बोलना चाहता हूं ताकि समय की कुछ बचत हो जाये।

***अध्यक्ष:** जैसी आपकी इच्छा है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं आरम्भ में ही यह बताना चाहता हूं कि यह अनुच्छेद उस अनुच्छेद माला के अन्त में आता है

जो प्रक्रिया-सम्बन्धी विषयों के सम्बन्ध में है। पहले तो मेरी समझ में नहीं आता कि हमारे संविधान में प्रक्रिया सम्बन्धी इतने नियम क्यों रखे गये हैं। मैंने संसार के कई देशों के संविधानों को पढ़ा है और हमारे सचिवालय ने भी हमारे सामने जो सांविधानिक उदाहरण रखे हैं उनमें भी उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में इतने प्रक्रिया विषयक नियम नहीं हैं। कल भी मैंने यह प्रश्न उठाया था कि संविधान में अनुच्छेद 200 का विषय क्यों प्रविष्ट किया जा रहा है। किन्तु डा. अम्बेडकर ने मुझ पर यह कटाक्ष किया है कि मैंने संविधान के मसौदे का अध्ययन नहीं किया है। यदि उन्हें इससे प्रसन्नता होती है तो वे यही समझें और मैं इसे निसंकोच स्वीकार कर लेता हूं कि सम्भवत: मैंने संविधान के मसौदे को उतने ध्यान से नहीं पढ़ा है जितने ध्यान से उन्होंने पढ़ा है। किन्तु मैं उन्हें बताना चाहता हूं कि जो प्रश्न मैंने उठाया था वह इससे भिन्न था। जैसा कि वे हमेशा करते आये हैं, उन्होंने मेरे प्रश्न की उपेक्षा की और कुछ दूसरा ही उत्तर दे दिया। मैंने उनसे निश्चित तथा स्पष्ट शब्दों में पूछा था कि क्या संसार के किसी अन्य देश के लिखित संविधान में इस प्रकार के अनुच्छेदों को स्थान दिया गया हैं। डा. अम्बेडकर ने पृष्ठपाद पर अंकित लेख की ओर संकेत किया और मुझ पर यह कटाक्ष किया कि मैंने संविधान के मसौदे का अध्ययन नहीं किया है। मैंने उसे ध्यानपूर्वक पढ़ा है, भले ही उतनी सावधानी से न पढ़ा हो जितनी सावधानी से उन्होंने पढ़ा है। कल शाम जब मैं घर वापस गया तो मैंने संसार के कई देशों के संविधान निकाले और उन सबको पढ़ा। मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि जितने प्रक्रिया विषयक नियमों को हमने उपबन्धित किया है।

***अध्यक्ष:** क्या आप कल के वादानुवाद का उत्तर दे रहे हैं?

***श्री एच.वी. कामत:** मैं इसे स्पष्ट करने का प्रयास कर रहा हूं कि इस अनुच्छेद को अन्य अनुच्छेदों के समान संविधान में प्रविष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** तब आप इसी विषय पर बोलें और कल के वादानुवाद की ओर संकेत न करें।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं दुविधा में पड़ गया हूं। कल आपने कहा था कि जब डा. अम्बेडकर बोलेंगे तो आप लोगों को उनसे प्रश्न पूछने के लिये प्रोत्साहित न करेंगे। यदि बाद को किसी अन्य अनुच्छेद के सम्बन्ध में भी हमें स्थिति को स्पष्ट न करने दिया जायेगा तो हम दुविधा में पड़ जायेंगे।

अब मैं अनुच्छेद 204 को उठाता हूं। चूंकि यह अनुच्छेद प्रक्रिया विषयक पूर्व स्वीकृत अनुच्छेदों के समान ही है इसलिये मैंने यह विचार किया कि पहले के अनुच्छेदों की ओर संकेत करना अनुचित न होगा।

कल डा. बक्शी टेकचन्द ने यह कहा था कि उच्च न्यायालयों को ऐसे मामलों को निबटाने का भार उठाना पड़ेगा जिनमें सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों। इसलिये मेरे विचार से इस विषय के सम्बन्ध में, अर्थात् इसके सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है कि जब कभी किसी अधीन न्यायालय में ऐसे मामले लम्बित होंगे, जिनमें सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होगा तो उच्च न्यायालय ऐसे मामलों को वापस ले लेगा।

***अध्यक्ष:** केवल विधि के ही निर्वचन के सम्बन्ध में नहीं। वास्तव में संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में।

***श्री एच.वी. कामतः** जी हां, श्रीमान्। उच्च न्यायालयों पर इसका दायित्व होगा कि वे इस प्रकार के मामलों को वापस लेकर उन पर स्वयं विचार करें। प्रोफेसर शाह ने जो संशोधन उपस्थित किया है और जो मेरे नाम से भी है उसमें यह सुझाव रखा गया है कि इस सम्बन्ध में उच्च न्यायालय को स्वविवेक से निर्णय करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये। मेरे मित्र श्री भारती ने एक बहुत ही युक्तियुक्त तर्क उपस्थित किया था और मेरे विचार से उसका आशय यदि पूर्णतः नहीं तो अंशतः मेरे संशोधन से पूरा हो जाता है। श्री भारती ने यह युक्तियुक्त तर्क उपस्थित किया था कि यदि किसी उच्च न्यायालय को उन सभी मामलों को निबटाना पड़े, जिनमें संविधान विषयक विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता है और जो अधीन-न्यायालय के सामने आते हैं, तो उसे ऐसे हजारों मामलों को निबटाना पड़ेगा और इस प्रकार यह आरम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त न कि अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त न्यायालय हो जायेगा। उदाहरण के लिये मैं यह कहना चाहता हूं कि जब तीसरे अध्याय अर्थात् मूलाधिकार विषयक अध्याय पर विचार-विमर्श हो रहा था तो प्रायः यह आलोचना की गई थी कि हम प्रत्येक अनुच्छेद में वर्णित अधिकारों को निर्बन्धित करके और एक हाथ से एक अधिकार अथवा स्वतंत्रता को देकर तथा दूसरे हाथ से उसे छीन कर, वकीलों के लिये एक स्वर्ग का निर्माण कर रहे हैं मेरे विचार से जब इन अधिकारों को प्रवर्त्तन में लाने के लिये न्यायालयों को परिचालित किया जायेगा तो अधिक सम्भावना इसी की है कि संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में सारवान विधि प्रश्न उठाये जायेंगे क्योंकि इतनी त्रुटियां रह गई हैं और इतने उपबंध रखे गये हैं कि बुद्धिमान वकील उनसे लाभ उठायेंगे, यद्यपि मैं यह नहीं कहता कि वे अनुचित रूप से लाभ उठायेंगे, वे संविधान के इन अनुच्छेदों के निर्वचन के सम्बन्ध में विधि-प्रश्न उठायेंगे। इसलिये अपने संशोधनों द्वारा मैंने यह सुझाव रखा है कि 'करेगा' शब्द के स्थान पर 'कर सकता है' शब्द रखे जायें। इस सम्बन्ध में सभी एकमत हैं कि चूंकि उच्च न्यायालय एक सक्षम निकाय है इसलिये उसे इसका निर्णय करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये कि किस प्रश्न को संविधान के निर्वचन का सारवान विधि-प्रश्न समझा जाये और किसे न समझा जाये। यदि वह यह समझे कि उस प्रश्न को उसे ही निबटाना चाहिये तो वह उस मामले को वापस ले सकता है और स्वयं निबटा सकता है। अन्यथा उच्च न्यायालय उसे अधीन न्यायालय के पास भेज सकता है और उससे उसे निबटाने के लिये कह सकता है। यदि कोई पक्ष उस न्यायालय के निर्णय से असंतुष्ट हो तो वह उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है और वह न्यायालय उसकी अपील पर विचार करेगा।

डा. अम्बेडकर के संशोधन में मैं देखता हूं कि पहले भाग का आशय यह है कि यदि उच्च न्यायालय की यह धारणा हो कि किसी मामले में संविधान के निर्वचन का विधि-प्रश्न अन्तर्गस्त है तो वह उसे स्वयं निबटा सकता है। इसलिये अनावश्यक शब्दों को निकालने के उद्देश्य से मैंने यह सुझाव रखा है कि 'कर सकता है' शब्द प्रविष्ट किये जायें ताकि उच्च न्यायालय अपनी स्वेच्छा से निर्णय कर सके। मेरी यह धारणा है कि 'करेगा' के स्थान पर 'कर सकता है' शब्द प्रविष्ट करने के लिये जो संशोधन उपस्थित किया गया है वह कई प्रकार से कार्य साधक प्रमाणित होगा।

अन्त में मुझे एक बात और कहनी है। यह अनुच्छेद इस सम्बन्ध में मौन है कि किसी मामले के सम्बन्ध में संविधान के निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न को किसी अधीन न्यायालय ने उठाना चाहिये अथवा विवाद-पीड़ित पक्षों ने। यदि विवाद-पीड़ित पक्षों को उच्च न्यायालय का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने का अधिकार है तो कोई कठिनाई नहीं होती, किन्तु यदि हमारा उद्देश्य यह है कि किसी अधीन-न्यायालय के किसी ऐसे मामले को उठाने पर जिसमें संविधान के निर्वचन का कोई विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, उसे उस मामले की ओर उच्च न्यायालय का ध्यान आकृष्ट करना चाहिये और उसे उच्च न्यायालय के पास भेज देना चाहिये, तो हमें इस अनुच्छेद को अधिक स्पष्ट करना चाहिये और यह कहना चाहिये कि अधीन न्यायालय का यह कर्त्तव्य होगा कि वह अपने पास लम्बित ऐसे मामले को, जिसमें संविधान के निर्वचन का विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, उच्च न्यायालय के पास भेजे। किन्तु यदि हम विवादग्रस्त पक्षों को इसकी स्वतंत्रता दे रहे हैं तो यह प्रश्न नहीं उठता। मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर अथवा श्री मुंशी वादानुवाद का उत्तर देते समय इस प्रश्न पर प्रकाश डालेंगे। मेरी अपनी यह धारणा है कि 'करेगा' शब्द के स्थान में 'कर सकता है' शब्द रखने से इस अनुच्छेद का आशय पूरा हो जायेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (मध्यप्रान्त : जनरल): मेरे मित्र श्री कामत ने इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में यह आलोचना की है कि इसमें जो विस्तृत विवरण दिया गया है वह संविधान में स्थान पाने योग्य नहीं है। किन्तु इस संविधान के अन्य भागों के सम्बन्ध में भी इस प्रकार की आलोचना की जा सकती है। हमने एक विस्तृत संविधान की रचना की है और इसलिये इस अवसर पर उसके कुछ अंगों को निकाल देने से उसकी सारी योजना खंडित हो जायेगी। इस समय इस सम्बन्ध में कुछ नहीं किया जा सकता है।

इस अनुच्छेद में जिस विषय का उल्लेख है वह एक महत्त्वपूर्ण विषय है। हमने अनुच्छेद 110 में यह उपबन्धित किया है कि संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में सभी प्रश्न उच्चतम न्यायालय के सामने रखे जायेंगे और वह उनका निर्णय करेगा। इसलिये यदि किसी मामले में संविधान के निर्वचन का विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो तो उचित यही होगा कि पहले उच्च न्यायालय उसका निर्णय करे और यदि विवाद पीड़ित पक्षों को उच्च न्यायालय के आदेश से संतोष न हो तो वे उच्चतम न्यायालय में अपील करें और वह उसका निर्णय करे। अन्यथा सारे मामले पर पहले अधीन न्यायालय में, फिर अपीलीय न्यायालय में और फिर उच्चतम न्यायालय में विचार करना होगा और इसमें बहुत धन व्यय होगा। अच्छा तो यह होगा कि किसी मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर पहले उच्च न्यायालय उस पर विचार करे और अपील होने पर उच्चतम न्यायालय विचार करे। यह बात अवश्य रह जाती है कि उस मामले के सम्बन्ध में निर्णय कौन करेगा।

डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसमें यह उपबंधित है कि या तो उच्च न्यायालय ऐसे मामले को वापस लेकर उस पर स्वयं विचार करेगा अथवा उसे निर्णय के लिये अधीन-न्यायालय के पास भेज देगा। मेरे विचार से इसमें दोनों प्रकार के प्रस्तावों का यथोचित समावेश है। मेरी अपनी धारणा यह है कि अच्छा यह होता यदि इस प्रकार

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

के मामले आरम्भ में उच्च न्यायालय के सम्मुख रखे जाते। उसका अर्थ यह होगा कि विवाद-ग्रस्त लोगों को पहले अधीन न्यायालय में और फिर उच्च न्यायालय में अपने मामले को रखने के लिये धन व्यय न करना पड़ेगा। मेरे विचार से मामले को पहले उच्च न्यायालय के सामने रखना चाहिये और संविधान के प्रश्न पर विचार करने के पश्चात् उच्च न्यायालय को उसे अधीन न्यायालय के पास भेज देना चाहिये। यदि कोई बड़ा मामला हो, क्योंकि पहले पूना के ताईजी के मामले के समान बड़े मामले हुए हैं, तो मेरे विचार से उसे उच्च न्यायालय को नहीं बल्कि आरम्भिक न्यायालय को निबटाना चाहिये। इस प्रकार का मामला आरम्भ में ही उच्च न्यायालय के सामने रखा जाना चाहिये और उसे सांविधानिक प्रश्न का निर्णय करके यह तय करना चाहिये कि वह स्वयं उस पर विचार करे अथवा आरम्भिक न्यायालय के पास उसे भेज दे। इसमें सभी विवाद पीड़ित लोगों के प्रति न्याय हो सकेगा।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मेरी यह धारणा है कि अनुच्छेद 204 को व्यवहार में लाने में बहुत कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी। वास्तव में किसी मुन्सिफ अथवा दण्डाधीश के न्यायालय में भी किसी छोटे मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न उठाया जा सकता है। उपबन्ध इस प्रकार है कि जैसे ही उच्च न्यायालय को यह ज्ञात हो कि किसी मामलें में संविधान के निर्वचन का प्रश्न उठाया गया है, तो वह उस मामले को अपने पास मंगा लेगा और संविधान के निर्वचन के प्रश्न का निर्णय करेगा। यह विषय इतना सरल नहीं है। किसी मामले के तथ्यों का निर्णय होने पर ही संविधान के निर्वचन के प्रश्न का निर्णय हो सकता है। यह हो सकता है कि लिखित वक्तव्य में किसी प्रश्न का उल्लेख हो किन्तु साक्षियों की परीक्षा करने पर, अथवा तथ्यों का निर्णय करने पर वह प्रश्न उठे ही नहीं। इसलिये यह हो सकता है कि उच्च न्यायालय के लिये संविधान के निर्वचन के प्रश्न के सम्बन्ध में निर्णय करना समयोचित न हो। यह प्रश्न किसी अपील में अथवा प्रस्ताव में अथवा सत्र-न्यायालय में पंच-निर्णय के समय उठ सकता है। उस समय कार्यवाही बन्द करनी होगी, क्योंकि उस प्रश्न का निर्णय उच्च न्यायालय को करना होगा और मामले को स्थगित करना होगा। उच्च न्यायालय के निर्णय के पश्चात् नये पंचों को बुलाने की आवश्यकता होगी। कई तरह की पेचीदगियां पैदा होंगी।

इसके अतिरिक्त यदि संविधान के निर्वचन के लिये उच्च न्यायालय किसी मामले को अपने पास मंगाता है और उसके निर्णय के पश्चात् वह तथ्य के निर्णय के लिये उसे वापस भेजा जाता है तथा न्यायालय कार्यवाही करता है और तथ्य का निर्णय करता है, तो मैं पूछता हूं कि वह व्यक्ति क्या करेगा जो उच्च न्यायालय के आरम्भिक निर्णय से असंतुष्ट हो? क्या वह उच्चतम न्यायालय में अपील करेगा अथवा तब तक रुका रहेगा जब तक कि आरम्भिक न्यायालय तथ्य का निर्णय न कर ले? इस अनुच्छेद से ये पेचीदगियां पैदा हो जायेंगी।

इसके अतिरिक्त जब उच्च न्यायालय के आरम्भिक निर्णय के पश्चात् वह न्यायालय अथवा पंच अपना निर्णय करेंगे तो क्या उनके निर्णय की अपील हो सकेगी। क्या मैं यह

भी जान सकता हूं कि क्या संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय के निर्णय की भी अपील हो सकेगी? क्या उच्च न्यायालय का निर्णय आरम्भिक न्यायालय का निर्णय समझा जायेगा अथवा उच्च न्यायालय का निर्णय? इस बीच आरम्भिक न्यायालय बड़ी दुविधा में पड़ जायेगा। हस्तान्तरण का प्रश्न केवल संविधान के निर्णय पर निर्भर होना चाहिये। कोई ऐसी विधि जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, चित्ताकर्षक नहीं होती। अधिकांश विधि-प्रश्नों का संविधान के निर्वचन से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस अनुच्छेद में यह नहीं कहा गया है कि हस्तान्तरण की कसौटी यह होगी कि संविधान के निर्वचन का प्रश्न पेचीदा और कठिन हो। मेरा यह निवेदन है कि केवल कठिन और महत्त्वपूर्ण प्रश्न ही हस्तान्तरित होने चाहिये। यह हो सकता है कि संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में जो प्रश्न उठाया गया हो वह बहुत ही सरल और साधारण हो। यदि उच्च न्यायालय प्रत्येक ऐसे मामले पर विचार करेगा जिसके सम्बन्ध में यह सन्देह हो कि उसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, तो उसे असंख्य अत्यन्त साधारण मामले निबटाने पड़ेंगे। इसके अतिरिक्त इससे जिलों में न्याय प्रशासन कुंठित हो जायेगा। इसलिये मेरा वह निवेदन है कि यह खंड ही निकाल दिया जाये। इस खंड के कारण बहुत पेचीदगियां पैदा हो जायेंगी। मैं यह भी बताना चाहता हूं कि व्यवहार-प्रक्रिया-संहिता की धारा 24 और दंड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 528 के अधीन उच्च न्यायालय को किसी अधीन न्यायालय में लम्बित मामले को अपने पास मंगाने अथवा किसी अन्य न्यायालय को हस्तान्तरित करने का अधिकार अबाध रूप से प्राप्त है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कभी संविधान के निर्वचन का कोई प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण हो सकता है कि उसका प्रभाव भारत के सारे राज्य क्षेत्र पर पड़े। जिन मामलों में ऐसा प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो उन्हें स्वविवेक से उच्च न्यायालय बिना किसी कठिनाई के अपने पास मंगा सकता है अथवा किसी अन्य न्यायालय को हस्तान्तरित कर सकता है। चूंकि अधीन न्यायालय ही साधारणतया सभी विधि-प्रश्नों का निर्वचन करते हैं इसलिये साधारण मामलों में संविधान के निर्वचन का प्रश्न भी उन्ही के निर्णय के लिये छोड़ा जा सकता है। अन्यथा इस प्रकार के कृत्रिम श्रम-विभाजन से कठिनाइयां उत्पन्न होंगी।

भारत सरकार के 1935 के अधिनियम में इस प्रकार की एक धारा है और जहां तक मैं समझता हूं यह विचार उसी से लिया गया है। किन्तु उस धारा के कई महत्त्वपूर्ण अंगों की उपेक्षा की गई है। मेरे विचार से उस धारा का निदेश करना आवश्यक है। वह उस अधिनियम की 225वीं धारा है। वह इस प्रकार है:

> ''225. (1) यदि इस धारा के उपबंधों के अधीन आवेदन-पत्र देने पर उच्च न्यायालय को इस सम्बन्ध में संतोष हो जाये कि अधीन न्यायालय में लम्बित कोई मामला ऐसा है जिसे उच्च न्यायालय सुनवाई के लिये अपने पास हस्तान्तरित करवाने की शक्ति रखता है और उसमें किसी संघीय अथवा प्रान्तीय अधिनियम के वैध होने का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, अथवा अन्तर्ग्रस्त होने की सम्भावना है, तो वह उस शक्ति को प्रयोग में लायेगा।
>
> (2) इस धारा के उद्देश्य के लिये आवेदन-पत्र तब तक न दिया जायेगा जब तक कि उसका सम्बन्ध किसी संघीय अधिनियम से न हो और संघ का महाधिवक्ता

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

उसे प्रस्तुत न करे अथवा जब तक उसका सम्बन्ध किसी प्रान्तीय अधिनियम से न हो और संघ का महाधिवक्ता अथवा प्रान्त का महाधिवक्ता उसे प्रस्तुत न करे।''

इस प्रकार का उपबन्ध तो समझ में आ सकता है क्योंकि इसमें किसी अधिनियम के वैध होने का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। इस प्रकार के प्रश्नों का महत्त्व होगा क्योंकि इनके सम्बन्ध में जो निर्णय होंगे उनका प्रभाव जनसाधारण पर पड़ेगा। जिन मामलों में इस प्रकार के प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों उनके सम्बन्ध में भारत के महाधिवक्ता अथवा प्रान्त के महाधिवक्ता का आवेदन-पत्र आने पर उच्च न्यायालय को उन्हें अपने पास हस्तान्तरित करवा लेना चाहिये। यह वांछनीय भी है और आवश्यक भी। भारत के अथवा प्रान्त के महाधिवक्ता के आवेदन-पत्र का ही यह अर्थ है कि वह मामला महत्त्वपूर्ण है। ऐसे बहुत कम मामले होंगे। किन्तु वर्तमान खंड के अधीन उच्च न्यायालय को स्वविवेक से कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं है। उसे अनिवार्य रूप से उस मामले को अपने पास मंगाना होगा। यदि हम यह कहते हैं कि साधारण मामले भी, जिनमें संविधान के निर्वचन के साधारण प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों, उच्च न्यायालय के निर्णय के लिये उसके पास हस्तान्तरित किये जाने चाहिये तो हम बहुत आगे बढ़ा जायेंगे। मुझे इस विषय की अधिक विस्तृत व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। मेरा यह निवेदन है कि इस खंड को निकाल देना चाहिये और यदि किसी उपबंध को प्रविष्ट करने की आवश्यकता ही हुई है तो उसे भारत सरकार के 1935 के अधिनियम की 225वीं धारा के आधार पर निर्मित करना चाहिये। इस व्यवस्था को तो स्वीकार किया जा सकता है। यदि हम इस खंड को संशोधित रूप में भी स्थान देते हैं तो उससे भी पेचीदगियां पैदा हो जायेंगी। यह हो सकता है कि कुछ मामलों में विवाद-पीड़ित पक्ष निर्धन हों। यदि ऐसे मामलों को उच्च न्यायालय अपने पास मंगा लेगा तो उसे एकतरफा निर्णय करना होगा। यह बहुत ही अनुचित होगा कि ऐसे मामलों में भी, जिनमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, निर्णय एकतरफा किया जाये और कोई विवाद-ग्रस्त पक्ष संकट में पड़ जाये। जैसा कि मैं निवेदन कर चुका हूं, किसी विधि के सम्बन्ध में अथवा उसके निर्वचन के सम्बन्ध में निर्णय तथ्य के आधार पर ही किया जा सकेगा। मामला तथ्य का ही होता है और इसलिये पहले तथ्य के प्रश्न का ही निर्णय करना चाहिये और फिर संविधान के निर्वचन का प्रश्न उठाना चाहिये। अन्यथा इसका अर्थ उल्टी गंगा बहाना ही होगा। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए मेरा यह निवेदन है कि इस खंड को निकाल दिया जाये।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैंने दो संशोधनों की सूचना दी है। उनमें से एक का उद्देश्य यह है कि 'करेगा' शब्द के स्थान में 'कर सकता है' शब्द रखे जाये और दूसरे का यह है कि यह खंड निकाल दिया जाये। श्रीमान्, मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि इस खंड को स्वीकार न करना चाहिये और चूंकि मैं अपने संशोधन की सार्थकता को समझता हूं इसलिये मेरी यही धारणा है कि इस अनुच्छेद को स्वीकार करना उचित न होगा। यह खंड इस प्रकार है:

''यदि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि उसके अधीन न्यायालय में लम्बित किसी मामले में इस संविधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त

जिसका निर्धारित होना मामले को निबटाने के लिये आवश्यक है तो वह उस मामले को अपने पास मंगा लेगा...''

वास्तव में इस प्रकार के मामलों में अन्तिम प्राधिकारी उच्चतम न्यायालय है। तर्कसंगत तो यही है कि यदि किसी न्यायालय को संविधान के निर्वचन का एकाधिकार प्राप्त हो तो उच्चतम न्यायालय को ही प्राप्त हो। उच्च न्यायालय को तो यह अधिकार प्राप्त ही नहीं हो सकता। मेरा यह नम्र निवेदन है कि जहां तक इस देश के पिछले सौ वर्ष के विधि के प्रशासन का सम्बन्ध है सभी न्यायालयों को संविधान के निर्वचन का अधिकार प्राप्त रहा है और मेरे विचार से इस क्षेत्राधिकार को ले लेने में किसी सिद्धांत का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त नहीं है। इसके विपरीत मेरे विचार से हमारे सारे संविधान का आधार यही है कि प्रत्येक न्यायालय इस प्रकार के प्रश्न का निर्णय करने के लिये सक्षम है। मैं यह जानता हूं कि कुछ देशों में संविधान के सम्बन्ध में तथा प्रशासन आदि के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये अलग-अलग न्यायालय हैं। उदाहरणार्थ, फ्रांस में प्रशासन सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार के न्यायालय हैं। भारत में ऐसे न्यायालय हैं जो सभी प्रकार के प्रश्नों का निर्णय करने के लिये सक्षम हैं। वास्तव में मुझे यह आपत्ति है कि हम अभी तक प्रचलित तथा इस संशोधन के स्वीकार होने तक प्रचलित न्याय प्रशासन के आधारभूत सिद्धांत का परित्याग करने जा रहे हैं। मैं धन पर आधृत क्षेत्राधिकार तथा विशेषाधिकार प्राप्त न्यायालयों में सन्निहित सिद्धांत का विरोध करता हूं। इस गलत सिद्धांत को कैसे कोई तर्कसंगत कह सकता है कि यदि किसी मामले में अधिक धनराशि अन्तर्ग्रस्त हो तो, जो न्यायालय उस पर विचार करे, उसे अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत क्षेत्राधिकार तथा क्षमता प्राप्त होनी चाहिये? मेरे विचार से यह बहुत ही दूषित सिद्धांत है। हमने इस देश में प्रत्येक व्यक्ति को अवसर समता तथा विधि के समक्ष समता की प्रत्याभूति दी है और इसलिये समुचित व्यवस्था यही होगी कि इस देश के प्रत्येक विवाद-पीड़ित व्यक्ति को पूर्णतया सक्षम न्यायालय में पूर्ण न्याय प्राप्त हो। यह कहा जाता है कि अधीन-न्यायालय इस संविधान के निर्वचन के लिये सक्षम नहीं है परन्तु हमने यह प्रत्याभूति दी है और यह सिद्धांत निश्चित किया है कि प्रत्येक न्यायालय सक्षम न्यायालय होगा और प्रत्येक व्यक्ति को न्याय प्राप्त करने का पूर्ण अवसर मिलेगा। इस दशा में यह कहना उचित नहीं है कि उच्च न्यायालय में ही संविधान का निर्वचन हो सकेगा। इसके अतिरिक्त श्रीमान्, संविधान के निर्वचन का प्रश्न दो प्रकार के मामलों में उठेगा। कुछ मामले तो ऐसे होंगे जिनमें एक सरकार का दूसरी सरकार से विवाद होगा किन्तु इन मामलों में वे अच्छे से अच्छे वकीलों को रख सकेंगी और जितना धन चाहेंगी व्यय कर सकेंगी। इन मामलों का निर्णय उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय कर सकता है। दूसरे प्रकार के मामले साधारण लोगों के होंगे। यदि कोई छोटा मामला होगा, जिसमें केवल सौ रुपये की या इससे कम की धनराशि अन्तर्ग्रस्त होगी, तो वादी और प्रतिवादी न्यायालय के समक्ष तो जायेंगे किन्तु उन्हें यह ज्ञात न होगा कि संविधान के उपबंध क्या हैं अथवा सारवान विधि-प्रश्न क्या होता है। किन्तु उस मामले में कोई पक्ष विपरीत पक्ष के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित कर सकता है कि उस मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न अथवा सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। इस दशा में उच्च न्यायालय के पास उस मामले को भेजने के अतिरिक्त उस न्यायालय के लिये कोई चारा न रह

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

जायेगा। यदि वह पक्ष यह प्रश्न न भी उठायेगा तो न्यायालय स्वयं इस प्रश्न को उठा सकता है और मामले को उच्च न्यायालय के पास भेज सकता है। भले ही कोई पक्ष उस मामले को उच्च न्यायालय में ले जाना चाहता हो या न ले जाना चाहता हो, किन्तु उसे उसके समक्ष उपस्थित होना ही पड़ेगा। इस प्रकार वकीलों को रखने में और अन्य प्रकार से साधारण न्यायालयों में इन पक्षों को जो धन व्यय करना पड़ता उससे कहीं अधिक धन उच्च न्यायालय में व्यय करना पड़ेगा। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुये, मेरे विचार से, उच्च न्यायालय के समक्ष मामलों को अनिवार्य रूप से भेजने की व्यवस्था से विवाद पीड़ित जनसाधारण का व्यय कम न होगा।

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, मामलों में अन्य प्रकार के भी कई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होंगे। पहले तो दो प्रश्नों का अर्थात् सारवान विधि-प्रश्न का और संविधान के निर्वचन के प्रश्न का निर्णय करना होगा। मेरे विचार से श्रीमान्, ये प्रश्न ऐसे नहीं हैं कि इन्हें तथ्य से अलग किया जा सके। विधि-प्रश्न कोई ऐसा प्रश्न न होगा जिसे तथ्य का निर्देश किये बिना हल किया जा सकेगा। तथ्यों पर विचार करना ही होगा। शुद्ध विधि-प्रश्न कभी न उठेंगे। इसके अतिरिक्त किसी प्रश्न का केवल विधि-प्रश्न होना ही पर्याप्त नहीं है। उसे सारवान विधि-प्रश्न होना चाहिये। यह एक और कठिनाई होगी। भारत सरकार के 1935 के अधिनियम में ये शब्द प्रयुक्त हैं: ''किसी अधिराज्य अथवा प्रान्त के अधिनियम के वैध होने का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो अथवा अन्तर्ग्रस्त होने की सम्भावना हो।'' यहां ''संविधान का निर्वचन'' शब्द प्रयुक्त हैं जिनका, ''किसी अधिराज्य अथवा प्रान्त के अधिनियम के वैध होने का प्रश्न'' शब्दों की तुलना में, कहीं अधिक विस्तृत अर्थ है। इसके अतिरिक्त श्रीमान्, आज भी उच्च न्यायालय किसी मामले को मंगाने अथवा हस्तान्तरित करने के लिये सक्षम हैं। यह मेरी समझ में आता है कि यदि पांच सौ मामलों में किसी विधि के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो तो उच्च न्यायालय उन्हें मंगा सकता है और उनके सम्बन्ध में निर्णय कर सकता है। किन्तु एक या दो मामलों को मंगाने का कोई प्रश्न ही न उठेगा। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि हमारे सूत्रधार, जो संविधान को इस रूप में स्वीकार करना चाहते हैं, गरीब लोगों की कठिनाइयों से पूर्णतया परिचित नहीं हैं। मेरी यह धारणा है कि वे न्याय की प्राप्ति के मार्ग में गरीब लोगों के लिये बाधा डाल रहे हैं। श्रीमान्, क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि संविधान के निर्वचन का प्रश्न इतना पवित्र क्यों समझा जा रहा है कि साधारण न्यायालयों को उस पर विचार करने का अधिकार ही नहीं है? जब यह साधारण न्यायालय व्यवहार-वादों का निर्णय कर सकते हैं तो किस कारण वे संविधान के निर्वचन के प्रश्न पर निर्णय न कर सकेंगे? एक गरीब आदमी को, एक देहाती को, उच्च न्यायालय के खर्च को उठाने के लिये क्यों विवश किया जा रहा है? हम साधाारण न्यायालयों की प्रतिष्ठा को कम कर रहे हैं ओर उन्हें एंग्लो-सैक्शन संस्थाओं के स्तर पर ला रहे हैं श्रीमान्, हम एक बहुत ही संकटापन्न प्रयोग करने जा रहे हैं और अधीन न्यायालयों की प्रतिष्ठा तथा कार्यसाधकता को कम करने जा रहे हैं और न्याय प्रशासन को विलम्बकर, कष्टकर और खर्चीला बनाने जा रहे हैं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, प्रस्तावित अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मुझे इस अनुच्छेद की उपयोगिता तथा औचित्य

पर सन्देह है और मेरे विचार से, वर्तमान व्यवस्था का परित्याग करना उचित न होगा। यदि किसी मामले में कोई ऐसा स्पष्ट सांविधानिक प्रश्न उठे, जिसके आधार पर उस मामले को निबटाया जा सकता हो, तो कोई कठिनाई न होगी। उस मामले को उच्च न्यायालय अपने पास मंगा सकता है और उसके निर्णय पर आपत्ति होने पर उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है, जैसा कि उच्चतम न्यायालय में अपील विषयक अनुच्छेद में उपबन्धित है। कठिनाई उन मामलों में होगी जिनमें अन्तर्ग्रस्त सांविधानिक प्रश्न महत्त्वपूर्ण होने पर भी वह कई प्रश्नों में से एक प्रश्न होगा। ऐसे किसी मामले के सम्बन्ध में यद्यपि उच्च न्यायालय को यह शक्ति होगी कि वह साक्ष्य लेने अथवा अन्य प्रश्नों को निबटाने के लिये उसे अधीन न्यायालय के पास भेज सके किन्तु यदि वह उसे अपने पास मंगायेगा तो प्रश्न यह उठता है कि क्या इस अवसर पर उसके निर्णय की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकेगी? यह हो सकता है कि सांविधानिक प्रश्न के निर्णय का अन्तिम निर्णय पर कोई प्रभाव न पड़े और जो पक्ष सांविधानिक प्रश्न के सम्बन्ध में अन्तिम न्यायालय में हार गया हो वह अन्य तथ्यों और साक्ष्य के आधार पर अन्त में जीत जाये। यदि यह मान लिया जाये कि आप सांविधानिक प्रश्न के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील करने के बारे में उपबन्ध रख रहे हैं तो क्या सांविधानिक प्रश्न का निर्णय होने तक वह मामला लम्बित रहेगा? हमारे संविधान के अधीन सांविधानिक विषयों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार बहुत विस्तृत है। वह किसी आदेश के निर्वचन के संबंध में प्रश्न उठा सकता है तथा केन्द्र और एककों के बीच शक्ति वितरण के सम्बन्ध में भी प्रश्न उठा सकता है। इसलिये इस न्यायालय में सभी प्रकार के सांविधानिक प्रश्न उठाये जा सकते हैं, भले ही अन्त में मामले को निबटाने के लिये वे सारवान प्रमाणित हों अथवा न हों। यदि वह सारवान भी प्रमाणित हो तो जो पक्ष सांविधानिक प्रश्न के आधार पर हार गया हो वह अन्त में उस मामले में जीत भी सकता है। क्या उच्च न्यायालय सांविधानिक प्रश्नों पर वकीलों के लड़ने के लिये एक अखाड़ा होने जा रहा है? सभा को इस प्रश्न पर विचार करना होगा और इसके सम्बन्ध में निर्णय करना होगा।

इसके अतिरिक्त किसी व्यवहार-वाद में भी कोई सांविधानिक प्रश्न उठ सकता है और वह किसी दण्ड-वाद में भी उठ सकता है। सांविधानिक प्रश्न के सम्बन्ध में जो निर्णय होगा वह या तो अभियुक्त के पक्ष में होगा या सम्राट के पक्ष में। ऐसे दण्ड-विषयक मामलों का क्या होगा? एक अन्य बात पर भी विचार करने की आवश्यकता है। किसी सांविधानिक प्रश्न पर बिना किसी मामले के तथ्यों पर विचार किये हुए, अकेले विचार नहीं किया जा सकता। संयुक्त राज्य अमरीका का उच्चतम न्यायालय इस कारण भी ''परामर्श-विषयक क्षेत्राधिकार'' की उपेक्षा करता है। हमने इस सिद्धांत को पूर्णतया स्वीकार नहीं किया है। वास्तव में इस संशोधन का यह प्रभाव होता है कि विधि-प्रश्न के सम्बन्ध में ''परामर्श-विषयक क्षेत्राधिकार'' अधिक विस्तृत हो जाता है, यद्यपि यह प्रश्न किसी मामले में उठने वाले कई प्रश्नों में से एक होगा। किसी एक प्रश्न के निर्णय के लिये किसी मामले को मंगाना एक नई प्रथा है। आस्ट्रेलिया के संविधान में एक उपबंध इस प्रकार है कि यदि राष्ट्रमंडल और राज्यों की शक्तियों के सम्बन्ध में कोई प्रश्न उठे तो, जिस मामले में यह प्रश्न उठे, उस मामले को आस्ट्रेलिया का उच्च न्यायालय अपने पास मंगा

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

सकता है। इसलिये किसी विशेष प्रश्न अथवा निर्णय पर विचार करने के लिये मामले को मंगाने का कोई प्रसंग नहीं रहता बल्कि सारे मामले को मंगा लिया जाता है। इसलिये मेरे विचार से इस आशय का एक सामान्य उपबंध रखना चाहिये कि यदि किसी मामले के तर्कों अथवा अभिलेखों को देखने से उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि कोई सारवान सांविधानिक विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है और उसी के आधार पर मामले को निबटाया जा सकता है तो वह उस मामले का अपने पास मंगा सकता है। वह न्यायालय उस दशा में उस मामले को नहीं मंगायेगा जबकि उसे विश्वास हो जाये कि सांविधानिक प्रश्न कई प्रश्नों में से एक है, भले ही वह सारवान प्रश्न हो। मैं इस सभा से पूछता हूं कि यदि हम अन्य बातों की ओर ध्यान न भी दें तो क्या यह विवाद पीड़ित लोगों के हित में है अथवा क्या यह सांविधानिक न्याय के हित में है अथवा क्या इससे अन्तिम न्यायाधिकरण का अन्तिम निर्णय शीघ्रता से प्राप्त हो सकता है अथवा क्या इस प्रकार की प्रक्रिया से यथोचित रूप से न्याय हो सकता है? इस नवीन प्रस्ताव की सार्थकता के सम्बन्ध में मुझे बहुत सन्देह है और सभा के सम्मुख मैं अपने विचारों को नम्रतापूर्वक प्रकट करना चाहता हूं। मुझे किसी विशेष विचारधारा से प्रेम नहीं है। मैं इसका विरोध नहीं कर रहा हूं कि सांविधानिक प्रश्न का यथाशीघ्र निर्णय हो जाना चाहिये किन्तु अन्तिम निर्णय की अवस्था भी आनी चाहिये। यदि सांविधानिक प्रश्न के निर्णय से मामले का अन्तिम रूप से निर्णय हो जाता हो तो अवश्य ही उसका निर्णय होना चाहिये। किन्तु यदि वह मामला अन्य बातों तथा तथ्यों पर आधृत हो और कई प्रश्नों में से सांविधानिक प्रश्न भी एक हो, तो उच्च न्यायालय को सारे मामले पर स्वयं विचार करना चाहिये। यदि केवल सांविधानिक प्रश्न का ही निर्णय होना हो तो क्या उसके सम्बन्ध में अपील की जा सकेगी या न की जा सकेगी? यदि अपील हो सकेगी तो मामला लम्बित रहेगा। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि कोई अपील न की जा सकेगी क्योंकि हम यह उपबंध रख चुके हैं कि कोई आदेश अन्तिम आदेश तभी समझा जायेगा जब किसी वादी के पक्ष में विनिश्चय होने पर ''वह उस मामले को निबटाने के लिये पर्याप्त हो''। उच्चतम न्यायालय विषयक अध्याय में हमने ''अन्तिम आदेश'' की यही परिभाषा की है।

श्रीमान्, मुझे इतना ही कहना है और मुझे विश्वास है कि डा. अम्बेडकर इन तथ्यों पर विचार करेंगे और इस विषय पर अधिक विचार करने के पश्चात् सभा के सम्मुख यथोचित संशोधन उपस्थित करेंगे। मैं यह कह देना चाहता हूं कि मुझे किसी विशेष विचारधारा से प्रेम नहीं है और मैं किसी भी तर्कयुक्त विचार को ग्रहण करने के लिये तैयार हूं। परन्तु मेरी यह धारणा है कि इस उपबंध से कार्यवाही में विलंब होगा, विवाद बहुत लंबे जायेंगे और निरर्थक व्यय होगा। मैं यह बताना चाहता हूं कि ''अन्तिम आदेश'' की कोई परिभाषा न होने के कारण कई मामलों में इस प्रकार की बातें होती रही हैं। ऐसा प्रत्येक मामला संघ-न्यायालय के सम्मुख उपस्थित किये जाने पर वह यह निर्णय करता था कि इस सम्बन्ध में विनिश्चय नहीं हो सकता क्योंकि विनिश्चय के लिये अधिक तथ्यों की आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि इस खंड का आज विचार करने के पूर्व डा. अम्बेडकर तथा इस सभा के अन्य सदस्य इन बातों की ओर ध्यान देंगे।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने यह अनुरोध किया है कि विवाद-पीड़ित लोगों के हितों को ध्यान में रख कर इस अनुच्छेद पर विचार किया जाये। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि यदि आपको विवाद-पीड़ित लोगों के हितों का ध्यान है तो आपको सन्देहयुक्त होकर इस अनुच्छेद को अस्वीकार कर देना चाहिये। यह अनुच्छेद उन थोड़े से अनुच्छेदों में से है जो भारत सरकार के अधिनियम से नहीं लिये गये हैं। पहले की किसी विधि में इस प्रकार का कोई उपबंध नहीं है, इसलिये इस अनुच्छेद के रचयिताओं से मेरा यह अनुरोध है कि वे सभा को इस अनुच्छेद की उपयोगिता से परिचित करायें और बतायें कि किस परिस्थिति में यह अनुच्छेद बनाया गया था तथा पहले क्या कठिनाइयां थीं और इस अनुच्छेद से कौन सी कठिनाइयां दूर हो जायेंगी।

श्रीमान्, इस समय स्थिति यह है कि जिस किसी व्यक्ति पर भी इस संविधान का प्रभाव पड़ेगा वह किसी भी ऐसे अधीन न्यायालय में वाद उपस्थित कर सकता है जिसे उस वाद पर विचार करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त हो। विवाद पीड़ित पक्ष आरम्भ में ही राजीनामा कर सकते हैं और उन्हें उच्च न्यायालय के सम्मुख उपस्थित होने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ सकती है। इस प्रकार उनका बहुत धन बच सकता है। बहुत से मामलों में अधीन न्यायालय में राजीनामा और समझौता हो जाता है। उच्च न्यायालय में मामले को ले जाने में जो खर्च होता है, तथा जो देर हो जाती है, उसकी कल्पना करके प्रत्येक व्यक्ति उच्च न्यायालय में उपस्थित होने से डरता है। उदाहरणार्थ यदि किसी पक्ष को ऐसी शिकायत हो जिसका सम्बन्ध संविधान के निर्वचन से हो तो वह विपक्षी पर दावा करता है और क्षतिपूर्ति की मांग करता है। यदि मामला जिला न्यायालय में ही तय हो सकता है तो आप उसे उच्च न्यायालय के सम्मुख जाने के लिये क्यों विवश कर रहे हैं? मेरे ध्यान में पहले यही प्रश्न आता है।

इसके अतिरिक्त इस समय भी यह व्यवस्था है कि यदि कोई मुन्सिफ अथवा अधीन न्यायाधीश अनुचित विनिश्चय करता है तो जिस पक्ष पर उसका प्रभाव पड़ता है वह हमेशा उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है और मामले का निर्णय कराता है। वर्तमान व्यवस्था के अधीन प्रत्येक मामला अवश्य ही उच्च न्यायालय में जायेगा। जहां तक मैं समझ पाता हूं इस प्रकार के वादों में एक पक्ष राज्य होगा। इस उपबंध के अधीन इस प्रकार के सभी मामलों में सरकार प्रतिवादी होगी और चूंकि उसे न देरी की चिन्ता होगी और न व्यय की इसलिये वह उस मामले को तुरन्त ही उच्च न्यायालय में ले जायेगी। इस स्थिति में, अनुच्छेद 204 के अधीन, प्रत्येक पक्ष को उच्च न्यायालय के सामने जाना ही होगा। मैं यह कहता हूं कि उच्च न्यायालय को मामले पर ही विचार करने का अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त क्यों न हो? इस स्थिति में कम से कम यह तो न होगा कि पहले मामला अधीन न्यायालय में उपस्थित किया जायेगा और फिर कुछ समय के पश्चात् उच्च न्यायालय में उपस्थित किया जायेगा। मेरा आशय यह है कि यदि इस प्रकार के मामलों को उच्च न्यायालय में उपस्थित करना ही हो तो उन्हें आरम्भ में ही उच्च न्यायालय में उपस्थित किया जाये। उच्च न्यायालय यदि चाहे तो मामले को स्वयं निबटा सकता है अथवा क्षति को आंकने के लिये, अथवा जो सहायता देनी हो उसे आंकने के लिये, वह उस मामले

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

को अधीन न्यायालय के पास भेज सकता है। क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि अधीन न्यायालय में भेजने की यह लम्बी प्रक्रिया क्यों अपनाई जा रही है? प्रत्येक विवाद पीड़ित व्यक्ति को यह ज्ञात होना चाहिये कि उसके मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। यदि उसे यह ज्ञात न होगा और उस मामले में एक पक्ष सरकार होगी तो वह अवश्य ही उच्च न्यायालय में जायेगा। यदि आप उस अनुच्छेद को रखना ही चाहते हैं तो विवाद पीड़ित व्यक्ति को दुहरे खर्च से बचाने के लिये संविधान में यह उपबंध होना चाहिये कि इस प्रकार के मामलों में उच्च न्यायालय को अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा। मेरे विचार से तो इस अनुच्छेद की कोई उपयोगिता नहीं है। भारत सरकार का अधिनियम कई वर्षों तक प्रवर्तन में रहा है और उसमें इस अनुच्छेद के न होने से लोगों को कोई हानि नहीं उठानी पड़ी है। किसी भी सार्वजनिक मंच से अथवा किसी भी समाचार पत्र में यह शिकायत नहीं की गई कि इस अनुच्छेद के अभाव का विवाद पीड़ित पक्षों पर अनुचित प्रभाव पड़ा है और अन्याय हुआ है। आखिर यह सभी जानते हैं कि इस प्रकार के मामले बहुत कम होंगे। यदि वे बहुत कम ही होंगे तो इनके सम्बन्ध में उच्च न्यायालय को ही अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त क्यों न हो? संविधान के निर्वचन के प्रश्न पर निर्णय करके उच्च न्यायालय या तो मामले को स्वयं निबटा देगा या क्षति के निर्णयों के लिये, अथवा यह जानने के लिये कि क्या सहायता दी जानी चाहिये, उसे अधीन न्यायालय के पास भेज देगा। अपने माननीय मित्र से मेरी यह प्रार्थना है कि वे प्रश्न के इस अंग पर विचार करें। मैंने इस सभा के बाहर उन्हें यह समझाने का प्रयास किया किन्तु मैं असफल रहा। मेरी यह प्रबल इच्छा रहती है कि उनसे कई प्रश्नों का स्पष्टीकरण करवाऊं किन्तु मेरी हमेशा उपेक्षा ही की जाती है और कभी तो अवमान करके उपेक्षा की जाती है। मेरा एक छोटी सी कविता में विश्वास है जिसे मैंने अपने स्कूल में पढ़ा था। वह इस प्रकार है:

''निष्फल रहे हों हम दो-एक बार
कोशिश करें मगर बार-बार।''

मैं कई बार कोशिश कर चुका हूं किन्तु निष्फल रहा हूं। मैं हमेशा यह कहते रहता हूं ''कोशिश करें मगर बार-बार'' और यह भी मेरी एक कोशिश है। मैं आगे भी कोशिश करूंगा।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस प्रश्न को हल करने में बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। सभा ने इस पर विचार करना है कि इन कठिनाइयों को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय क्या है?

मैं यह देखता हूं कि इस अनुच्छेद पर अथवा मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर के संशोधन पर तीन आपत्तियां की गई हैं। पहली बात यह कही गई है कि इस प्रकार का कोई अनुच्छेद रखना ही नहीं चाहिये। दूसरी बात यह है कि यदि उच्च न्यायालय को इस प्रकार की शक्ति देनी ही है तो उसे पूरे मामले पर न कि सांविधानिक विधि पर, विचार करना चाहिये। तीसरी बात यह है कि यदि सांविधानिक प्रश्न आरम्भिक प्रश्न हो तो उसे उच्च न्यायालय के सामने रखा जाये अथवा उच्च न्यायालय उसे अपने पास मंगवाये

किन्तु यदि विधि-प्रश्न तथ्य प्रश्न से संलग्न हो तो वह ऐसा न करें। अभी तक जो वादानुवाद हुआ है उसमें यही तीन बातें कही गई हैं।

इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिये कि सांविधानिक प्रश्न क्या है? यदि किसी विधि का प्रभाव किसी नागरिक की स्वतंत्रता पर पड़ता हो और उससे उसके मूलाधिकारों का हनन होता हो तो उसे यह सांविधानिक अधिकार प्राप्त है कि वह या तो उच्चतम न्यायालय में या उच्च न्यायालय में वाद उपस्थित करे। इसलिये अधिकांश दण्ड-विषयक मामलों में नागरिक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह सांविधानिक प्रश्न के निर्णय के लिये इन दो न्यायालयों में से किसी न्यायालय में वाद उपस्थित करे। यह पहला तर्क है।

दूसरा तर्क यह है कि अनुच्छेद 110 और 112 के अधीन किसी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण के निर्णय अथवा आज्ञप्ति अथवा अन्तिम आदेश के सम्बन्ध में अपील होने पर अथवा विशेष इजाजत मिलने पर उच्चतम न्यायालय को सांविधानिक प्रश्नों का निर्णय करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त है। इसलिये सभी सांविधानिक विषयों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अन्तिम अपील हो सकती है।

कुछ मामले ऐसे होते हैं जिनको किसी एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। इसके सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता है कि अन्य तथ्य-सम्बन्धी अथवा विधि-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने के पूर्व क्या इन मामलों में अन्तर्ग्रस्त सांविधानिक प्रश्न का निर्णय करने के लिये कोई उपाय ढूंढ निकाला जाये अथवा पहली बार या दूसरी बार अपील होने पर जब वह मामला उच्च न्यायालय में पहुंचे तब उस प्रश्न का निर्णय होने दिया जाये। हमें दो प्रकार की कठिनाइयों पर विचार करना है। एक प्रकार की कठिनाई का वर्णन मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर तथा इस सभा के कुछ अन्य माननीय सदस्यों ने किया है। किन्तु इससे भी बड़ी कठिनाइयां हैं जिन पर हमें विचार करना है। किसी मामले में अन्तर्ग्रस्त सांविधानिक प्रश्न उस मामले का आधारभूत प्रश्न होता है और यदि उसके सम्बन्ध में आरंभ में ही निर्णय नहीं किया गया तो विधि के प्रसंग में उस मामले के बारे में बहुत सन्देह उत्पन्न हो जायेगा। उदाहरण के लिये इसी प्रश्न को लीजिये कि कोई विधि राज्य की विधायिनी शक्ति की परिधि में है या केन्द्र की विधायिनी शक्ति की परिधि में। यह प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है कि यदि इसका शीघ्र ही निर्णय न किया गया तो हितों का हस्तान्तरण हो सकता है, अधिकारों का शून्यन हो सकता है और प्रदत्त अधिकारों का अपहरण हो सकता है। यह कई वर्षों के लिये अर्थात् चार या पांच वर्ष के लिये होगा और फिर उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय यह घोषित करेगा कि वह विधि न्यायसंगत नहीं है। इसलिये इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये क्या यह अच्छा न होगा कि संविधान के तत्सम्बन्धी उपबंध का आरम्भ में ही निर्वचन किया जाये?

इसी प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिये यह अनुच्छेद रखा जा रहा है। पहले से जो कुछ होता आया है उसे मैं बताऊंगा। एक अधीन-न्यायालय का न्यायाधीश किसी विधि प्रश्न का एक प्रकार का निर्वचन करता है और दूसरे जिला-न्यायालयों में उसका

[श्री के.एम. मुन्शी]

दूसरे प्रकार का निर्वचन किया जाता है और वह विभेद उस समय तक चलता रहता है जब तक कि उच्च न्यायालय उस प्रश्न का निर्णय नहीं करता। क्या यह उचित है कि न्यायाधीश किसी सांविधानिक विषय का इस प्रकार विभिन्न निर्वचन करें? यदि यह उचित नहीं है तो किसी ऐसे उपाय को ढूंढ निकालने की आवश्यकता है जिससे कोई विवाद-पीड़ित व्यक्ति, यदि वह चाहे तो, इस विषय का निर्णय यथाशीघ्र करा सकता है।

यह कोई नई बात नहीं है। सभा को स्मरण होगा कि व्यवहार-प्रक्रिया संहिता के 46वें आदेश के अन्तर्गत अधीन न्यायालयों को यह शक्ति प्राप्त है कि वे विधि प्रश्न के महत्त्वपूर्ण सिद्ध होने पर उसे निर्णय के लिये उच्च न्यायालय के समक्ष रखे। इसके अतिरिक्त, जैसा कि मेरे माननीय मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद सभा को बता चुके है, भारत सरकार के अधिनियम की धारा 225 के अधीन उच्च न्यायालय इसके लिये सक्षम है, अथवा वास्तव में उस पर यह दायित्व है, कि वह सब ऐसे मामलों को अपने पास मंगा ले जिनमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न उठाया गया हो। ऐसे उदाहरण हैं जिनमें उच्च न्यायालय में अधीन न्यायालयों से कुछ मामलों को मंगा कर उनमें अन्तर्ग्रस्त विधि-प्रश्नों तथा सांविधानिक प्रश्नों का निर्णय किया है। जो संशोधन उपस्थित किया गया है उसमें यह उपबंध रखा गया है कि यदि किसी अधीन न्यायालय में सांविधानिक औचित्य का कोई प्रश्न उठाया गया हो तो कोई भी विवाद-ग्रस्त पक्ष उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर उसे दो बातों के बारे में संतुष्ट करेगा अर्थात् वह यह प्रमाणित करेगा कि उसके मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है और यह भी प्रमाणिक करेगा कि उसका निर्णय मामले को निबटाने के लिये न कि उससे सम्बद्ध किसी अन्य प्रश्न के हल के लिये आवश्यक है। इन दो शर्तों के पूरे होने पर ही उच्च न्यायालय मामले को अपने पास मंगायेगा। उसे मंगाने में उच्च न्यायालय वही कार्यवाही करेगा जो वह भारत सरकार के अधिनियम की धारा 225 के अधीन करता, किन्तु वह इस परिसीमा से निर्बन्धित न होगा कि उसे सारे मामले को ही निबटाना होगा। इस अनुच्छेद में दो विकल्प हैं। एक यह है कि उच्च न्यायालय उस मामले को स्वयं निबटा सकता है और दूसरा यह है कि यदि वह उचित समझे तो केवल विधि-प्रश्न के सम्बन्ध में ही निर्णय कर सकता है। दूसरी दशा में वह केवल विधि-प्रश्न के सम्बन्ध में निर्णय करेगा और अन्य प्रश्नों के निर्णय के लिये मामले को अधीन न्यायालय के पास भेज देगा। यदि किसी मामले में तथ्य के और विधि के प्रश्न एक दूसरे से सम्बद्ध हों तो उच्च न्यायालय इस प्रश्न पर विचार करेगा कि सांविधानिक प्रश्न को अलग करना सम्भव है या नहीं और यदि उसे अलग करना सम्भव न हुआ तो वह पूरे मामले को उसी प्रकार निबटायेगा जैसे वह धारा 225 के अधीन निबटाता अथवा वह आरम्भिक न्यायालय से ऐसे तथ्य प्रश्न का निर्णय करने के लिये कह सकता है जो विधि-प्रश्न के निर्णय के लिये आवश्यक हो। जो असुविधा होगी उसे दूर करने का कोई स्पष्ट उपाय नहीं है परन्तु सभी बातों पर विचार करने के उपरांत सुविधाजनक यही प्रतीत होता है कि सांविधानिक प्रश्नों के निर्वचन में एकरूपता हो और अधीन न्यायालयों में विभिन्न न होने दिया जाये?

मुझे इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में यह आपत्ति सुनकर आश्चर्य हुआ कि सभा ने उच्चतम न्यायालय को सांविधानिक लेखों को जारी करने की अत्यधिक शक्ति प्रदान की

है जिसके कारण जब तक उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय बहुत से मामलों में अन्तर्ग्रस्त सांविधानिक औचित्य प्रश्न का निर्णय न कर लेगा तब तक उन सबमें कुछ भी न हो सकेगा। मेरे मित्र पंडित भार्गव ने दो आपत्तियां की हैं जिनमें से एक खर्च के सम्बन्ध में है और दूसरी निर्णय में देरी के सम्बन्ध में। यदि सारी स्थिति का विश्लेषण किया जाये तो ये दोनों तर्क निराधार प्रतीत होंगे। जहां तक खर्च को सम्बन्ध है, क्या इसमें धन की बचत न होगी कि किसी मामले में अन्तर्ग्रस्त ऐसे सांविधानिक प्रश्न को, जो उस मामले का आधारभूत प्रश्न हो, पहले हल किया जाये और उस मामले में किसी पक्ष के सांविधानिक प्रश्न के सम्बन्ध में अपील करने के पूर्व साक्ष्य न ली जाये? यदि पहले साक्ष्य ली गई तो अधिक धन व्यय होगा। कई मामलों का तो सांविधानिक प्रश्नों के निर्णय से ही निबटारा हो जायेगा। जहां तक देरी का सम्बन्ध है। यह सभी को विदित है कि अधीन न्यायालयों में प्रत्येक मामले को निबटाने में बहुत देर लगती है। इस दशा में जो पक्ष सांविधानिक प्रश्न उठाना चाहेगा वह मामले का निर्णय होने के पूर्व ही उसे अवश्य ही उच्च न्यायालय में उपस्थित करेगा और जहां तक अधीन न्यायालय के निर्णय का सम्बन्ध है उसमें इस कारण कुछ देर न होगी। जब तक उस मामले की अधीन न्यायालय में सुनवाई होगी तब तक उच्च न्यायालय उस प्रश्न का निर्णय कर चुकेगा।

दूसरी बात यह है कि आरम्भ में ही इस प्रकार का निर्णय होने से उसका महत्त्व सारे भारत के लिये होगा। नये संशोधन का खंड (ख) इस प्रकार है:

> ''(ख) उक्त विधि-प्रश्न का निर्धारण कर सकेगा तथा ऐसे प्रश्न पर अपने निर्णय की प्रतिलिपि सहित उस मामले को उस न्यायालय को, जिससे मामला इस प्रकार मंगा लिया गया है, लौटा सकेगा तथा उसके प्राप्त होने पर उक्त न्यायालय ऐसे निर्णय का अनुसरण करते हुए उस मामले को निबटाने के लिये आगे कार्यवाही करेगा।''

''निर्णय'' शब्द प्रयुक्त हुआ है और यही शब्द अनुच्छेद 110 में भी प्रयुक्त हुआ है। इसलिये यदि आवश्यक हो तो विवाद-ग्रस्त पक्ष विधि-प्रश्न के सम्बन्ध में सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकते हैं। इससे इस प्रश्न के सम्बन्ध में सारे देश के निर्णयों में एकरूपता आ जायेगी। वह बहुत कुछ परामर्श विषयक क्षेत्राधिकार के अनुरूप ही है और जब संविधान में सांविधानिक औचित्य प्रश्न का निर्णय करने का अधिकार न्यायपालिका को दिया गया है तो इसकी बहुत आवश्यकता है कि किसी प्रश्न पर यथाशीघ्र ऐसा निर्णय सुनाया जाये जो सारे देश के लिये नही तो कम से कम सारे प्रान्त के लिये बन्धनकारी हो। अनुच्छेद 25, 110 और 112 में जो व्यवस्था की गई है उसका उद्देश्य यही है कि निर्णयों में एकरूपता हो और वास्तव में इस अनुच्छेद द्वारा उस सांविधानिक व्यवस्था को अधिक विस्तृत बना दिया गया है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि कठिनाइयों को हल करने का यह सर्वोत्तम उपाय है और मुझे आशा है कि सभा इसे स्वीकार कर लेगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, इस सभा में पिछले कई दिनों से कई वकील सदस्यों के विधि-सम्बन्धी व्याख्यानों को एक साधारण जन के नाते सुनकर मैंने यह अनुभव किया कि जिस प्रकार संशोधन उपस्थित किये जाते है, परिवर्तन किये

[श्री टी.टी कृष्णमाचारी]

जाते हैं और जिस प्रकार केवल काल्पनिक मामलों के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार विस्तृत किया जाता है और इन काल्पनिक मामलों के सम्बन्ध में, जो काल्पनिक होने के कारण एक समान ही होते हैं, जिस अनिश्चितता का प्रदर्शन किया जाता है उसके सम्बन्ध में चेतावनी देने का समय आ गया है। आज भी हमने कई वकील सदस्यों के परस्पर विरोधी विचारों को सुना है। कुछ ने उस स्थिति का वर्णन किया जिसमें वे आकस्मिक परिस्थितियां, जिनके सम्बन्ध में हम एक अनुच्छेद में उपबंध रखना चाहते हैं उत्पन्न ही नहीं हो सकती अथवा उत्पन्न होने पर निराकृत हो जायेंगी। इन वक्ताओं के सम्बन्ध में यही कहना उचित होगा कि प्रत्येक का तर्क एक सीमा तक ठीक है। यदि इन सभी बातों का आधार काल्पनिक ही है तो यह नहीं कहा जा सकता कि श्री मुन्शी के ही विचार पवित्र हैं अथवा श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के ही विचार पवित्र हैं।

श्रीमान्, मेरा यह उद्देश्य नहीं है कि सभा के सम्मुख जो अनुच्छेद है और मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसे मैं निरर्थक सिद्ध करूं। मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि इस प्रकार के प्रश्नों को हल करने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि उनके सम्बन्ध में संसद कोई विधि बनाये अथवा उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालयों के सहयोग से उच्चतम न्यायालय नियम बनाये और यदि आवश्यक हो तो संसद उन नियमों का अनुमोदन करे। वास्तव में क्या हम उन सभी आकस्मिक स्थितियों की कल्पना करने में समर्थ हैं जो आगे चल कर उत्पन्न हो सकती हैं? मेरे विचार से हम समर्थ नहीं है। यद्यपि मुझे उन लोगों के विधि-ज्ञान के प्रति बहुत श्रद्धा है, जिन्होंने इस सभा द्वारा स्वीकृत पूर्ववर्त्ती अनुच्छेदों का मसौदा तैयार किया है, किन्तु साथ ही मुझे इस सभा के कुछ सदस्यों के इस तर्क का खंडन करने में संकोच का अनुभव होता है कि इस व्यवस्था से देश में विवादों के बढ़ने की आशंका है।

न्याय सम्बन्धी उपबंधों पर जब विचार-विमर्श हो रहा था तो उस समय उच्चतम न्यायालय के कार्यक्षेत्र को विस्तृत करने का प्रयास किया गया था। यह कहा गया है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिये यही एकमात्र उपाय है। बाद में यदि मुझे अवसर मिला तो मैं इस प्रश्न पर अपने विचार प्रकट करने का प्रयास करूंगा कि क्या अपीलों के लिये अधिक अवसर देने से ही स्वतंत्रताओं की सर्वोत्तम रूप से रक्षा हो सकती है। अनुच्छेद 204 के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किया गया हे, तथा उसके पहले जो संशोधन उपस्थित किये गये थे उनके सम्बन्ध में श्री मुन्शी का यह कहना है कि एक ही बन्धनकारी विनिश्चय हो और उसी के अनुसार भविष्य में सभी मामलों के सम्बन्ध में निर्णय हो। क्या यह संभव है? यदि एक ही निर्णय बन्धनकारी हो सकता तो क्या संसार में न्यायालयों के निर्णयों पर आधृत इतनी विधियां होती? श्री मुन्शी नि:संदेह अमेरिका की न्याय प्रक्रिया से परिचित होंगे। वहां इस कारण उस देश के निवासियों को बहुत अनिश्चितता का सामना करना पड़ा है कि वहां के संविधान के उपबंध सूत्र-रूप में हैं और विस्तृत रूप में नहीं हैं जिसके फलस्वरूप उनसे उन सभी आकस्मिक स्थितियों के सम्बन्ध में निर्णय नहीं हो सकता है जिनकी कल्पना मनुष्य का मस्तिष्क उसी प्रकार कर सकता है जैसे सभा के सम्मुख उपस्थित इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में की जा रही है।

साथ ही मेरी यह भी धारणा है कि श्री मुन्शी के निर्वचन में कोई ऐसा जादू नहीं है कि उसे श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के निर्वचन से श्रेष्ठ कहा जा सके। एक मित्र ने मुझसे पूछा है कि यदि अनुच्छेद 110 प्रवर्त्तन में रहा और किसी मामले में संविधान के निर्वचन का कोई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त रहा तो उसका क्या होगा? क्या वह उच्चतम न्यायालय के सम्मुख रखा जायेगा? हम कह नहीं सकते। श्री मुन्शी के इस कथन का कोई अर्थ नहीं है कि अमुक-अमुक बातें होंगी और अन्त में सब कुछ ठीक हो जायेगा। सब कुछ ठीक कैसे हो जायेगा? उन मामलों का सम्बन्ध केवल उन आकस्मिक स्थितियों से न होगा जिनकी कल्पना हम कर रहे हैं बल्कि मनुष्यों से भी होगा। कोई न्यायाधीश अपनी सम्मति के अनुसार कोई विशेष प्रकार का निर्णय कर सकता है और कोई अन्य न्यायाधीश अन्य प्रकार का निर्णय कर सकता है। किसी न्यायाधीश-वर्ग का निर्णय उसी प्रकार के मामलों का निर्णय करने वाले अन्य न्यायाधीशों के लिये बन्धनकारी नहीं हो सकता है। इसकी सम्भावना हमेशा बनी रहती है कि कोई निर्णय किसी अन्य निर्णय के प्रकाश में अनियमित घोषित हो जाये।

यह संशोधन थोड़े समय के लिये भले ही प्रविष्ट कर लिया जाये परन्तु मेरी यह धारणा है कि इस संविधान में कोई ऐसा उपबन्ध होना चाहिये, जिसके अधीन इस प्रकार की सभी कमियां संसद निर्मित विधि द्वारा दूर हो सकें। मैं उन लोगों में से नहीं हूं जिनका यह विश्वास है कि हमें संसद की ज्यादतियों से देश की, विवाद-ग्रस्त व्यक्तियों की, वकीलों की और वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति की रक्षा करनी चाहिये। मैं उन चार या पांच व्यक्तियों की अपेक्षा जो अपने को सुयोग्य समझते हों किन्तु विद्वेष के भाव से मुक्त न हुए हों, साधारण बुद्धि वाले पांच सौ लोगों पर विश्वास रखना अधिक पसन्द करता हूं। संयुक्त राज्य अमेरिका की घटनाओं से मेरा विश्वास और भी सुदृढ़ हो जाता है। वहां के न्यायाधीश राजनैतिक बातों से प्रभावित हो जाते हैं और वास्तव में 1936 तक दिये हुए बहुत से निर्णयों को 1936 के पश्चात् उलटना पड़ा और कुछ मामलों में तो उन्हीं न्यायाधीशों ने संविधान का भिन्न निर्वचन किया। इसलिये मेरे विचार से इस संविधान में किसी स्थल पर कोई ऐसा उपबन्ध होना चाहिये जिसके अधीन ये सब कठिनाइयां संसद निर्मित विधि द्वारा दूर हो सकें भले ही इसका अर्थ यह हो कि न्यायालयों का क्षेत्राधिकार कुछ अंश में संसद को प्राप्त हो जायेगा क्योंकि उतने ही अंश में उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों का क्षेत्राधिकार भी कम हो जायेगा। इसी उपाय से हम विवादों की संख्या को तथा न्यायालयों के भार को कम कर सकते हैं।

अपनी जगह पर जाने के पूर्व मैं इस सभा के सदस्यों से केवल यह कहना चाहता हूं कि आज हम जो कुछ करने जा रहे हैं वह लोकमत के विरुद्ध है क्योंकि लोग यह नहीं चाहते हैं कि विवाद बढ़े। हम इस व्यवस्था से अधिकाधिक विवाद का अवसर प्रदान कर रहे हैं। मैंने पहले एक अवसर पर किसी विशेष बुद्धि से प्रेरित होकर यह नहीं कहा था कि यह संविधान वकीलों के लिये एक स्वर्ग का निर्माण करेगा। उस समय के प्रसंग में यह ठीक हो या न हो, किन्तु उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के लिये जो उपबन्ध रखे गये हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए आज के प्रसंग में तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह ठीक है। हम विवादों के बढ़ने के लिये अधिकाधिक अवसर दे रहे हैं। मेरे माननीय मित्र श्री मुन्शी ने एक अन्य प्रसंग में यह कहा था कि

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

लोगों को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने का बहुत अवसर मिलेगा। यदि यह सच है तो विवाद बढ़ने ही चाहिये। इन विवादों में धन व्यय कौन करेगा? इनसे लोगों का धन व्यर्थ में नष्ट होगा क्योंकि इन विवादों में अधिकतर ऐसे लोग पड़े रहते हैं जो अधिक धन व्यय नही कर सकते। विवाद पीड़ित लोग लड़ते-लड़ते अन्त में बिल्लियों के समान लड़ने लगते और केवल उनकी दुमें ही शेष रह जाती हैं। इससे वकीलों को लाभ हो सकता है, न्यायाधीशों को लाभ हो सकता है और राजस्व धन भी बढ़ सकता है, किन्तु हानि उठानी पड़ेगी लोगों को। इसलिये इस सभा को तथा इन उपबंधों के लिये जो लोग उत्तरदायी हैं उनको यदि केवल तात्कालिक स्थिति का ही ध्यान नहीं है और केवल इसी का ध्यान नहीं है कि अमुक स्थिति का निराकरण इन उपबंधों से हो सकेगा या नहीं तो उन्हें देश के हित को ध्यान में रख कर किसी स्थल पर एक ऐसा व्यावृत्ति-खंड रखना चाहिये जिसके अधीन इन विषयों का निर्णय संसद निर्मित विधि द्वारा अथवा न्यायालयों द्वारा निर्मित तथा संसद द्वारा अनुमोदित नियमों द्वारा हो सकेगा ताकि विवादों की संख्या अत्यधिक न होने पावे।

मैं उपस्थित संशोधन के सम्बन्ध में केवल इतना कह सकता हूं कि वह उन अन्य संशोधनों से अधिक सरल प्रतीत होता है जो कल सभा के स्थगित होने के पश्चात् प्रस्तावित किये गये थे और अपेक्षाकृत अधिक लम्बे और इस कारण दुर्बोध हैं। इसलिये सम्भवत: इस संशोधन में कुछ सार तो है ही और सभा उस पर विचार कर सकती है। मेरा केवल यह निवेदन है कि यह न समझा जाये कि यही इस विषय पर अन्तिम बात है और इसलिये सभा को मसौदा समिति को तथा इन खंडों के लिये उत्तरदायी लोगों को यह शक्ति प्रदान करनी चाहिये कि वे इस विषय के सम्बन्ध में स्वीकृत सभी अनुच्छेदों पर विचार करें और कोई ऐसा व्यावृत्ति खंड रखे जिसके आधार पर संसद हस्तक्षेप कर सके और विवादों की संख्या न बढ़ने दें।

अपने इस मत के साथ मैं डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित संशोधन का समर्थन करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरे विचार से मैंने जो संशोधन उपस्थित किया है उसके निर्णय के लिये अधिक विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं है। सभा को स्मरण होगा कि कल जब हम अनुच्देद 204 पर विचार कर रहे थे तो मेरे मित्र श्री भारती ने उस अनुच्छेद के अन्तिम वाक्य के सम्बन्ध में अर्थात् इसके सम्बन्ध में कि उच्च न्यायालय उस मामले को मंगा लेगा और उसे स्वयं निबटायेगा, एक प्रश्न उठाया था । श्री भारती का प्रश्न बहुत तर्कपूर्ण था। वह इस प्रकार था। जब अनुच्छेद 204 में केवल यही उपबन्धित है कि उच्च न्यायालय को संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में सारवान विधि-प्रश्न पर विचार करना चाहिये तो उससे यह आशा क्यों कि जाये कि वह पूरे मामले को अपने पास मंगाये और उसे निबटाये? उनका यह तर्क था कि किसी मामले में कई प्रकार के प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो सकते हैं उनमें से एक प्रश्न संविधान के निर्वचन का विधि-प्रश्न भी हो सकता है। अन्य प्रश्न संसद द्वारा निर्मित साधारण विधि के निर्वचन के प्रश्न हो सकते हैं। इस प्रकार के किसी मामले में, जिसमें मिश्रित प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, अर्थात् एक प्रश्न संविधान के निर्वचन का हो और अन्य प्रश्न साधारण विधि के निर्वचन

के हों, यह ठीक है कि उच्च न्यायालय को विधि के निर्वचन के सम्बन्ध में निर्णय करने की शक्ति प्राप्त हो, किन्तु उससे यह अपेक्षा क्यों की जाये कि वह पूरे मामले को अपने पास मंगाये और संविधान के निर्वचन विषयक प्रश्न का ही निर्णय नहीं करे बल्कि साधारण विधि के निर्वचन विषयक प्रश्नों का भी निर्णय करे। मैं यह कह चुका हूं कि वह बहुत ही तर्कपूर्ण प्रश्न था और जब मैंने उनके तर्क को सुना तो मैंने उसके वजन को समझा और इसीलिये आपसे इन अनुच्छेद को स्थगित रखने की अनुमति मांगी।

मैं यह बताना चाहता हूं कि जब हम अनुच्छेद 121 पर विचार कर रहे थे तो मेरे मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने इसी प्रकार का एक प्रश्न उठाया था। वह भी उच्चतम न्यायालयों में ऐसी अपीलों के सम्बन्ध में था जिनमें मिश्रित प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होते हैं, अर्थात् जिनमें सांविधानिक विधि-प्रश्न के साथ संसद द्वारा निर्मित साधारण विधि के निर्वचन के प्रश्न भी अन्तर्ग्रस्त होते हैं। प्रारम्भिक मसौदे में यह उपबध था कि ऐसे सभी मामलों के सम्बन्ध में, जिनमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता है, इस प्रकार की अपील का निर्णय पांच न्यायाधीशों की एक मंडली करेगी। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने यह प्रश्न उठाया था कि कोई पक्ष, दुष्टता से प्रेरित होकर तथा पांच न्यायाधीशों की मंडली से लाभ उठाने के हेतु अपनी अपील में सांविधानिक विधि के निर्वचन का प्रश्न भी उठा सकता है यद्यपि विचार करने पर अन्त में वह सारहीन ही सिद्ध हो। उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायाधीश किसी ऐसी अपील पर विचार करने में अपना समय नष्ट क्यों करें, जिसमें वास्तव में संविधान के निर्वचन का कोई भी प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो? सभा को स्मरण हेगा कि उनका तर्क स्वीकार कर लिया गया था। यदि सभा के सदस्यों के पास चौथे सप्ताह की संशोधन सूची संख्या 1 हो तो वे संशोधन संख्या 43 में देखेंगे कि हमने इस आशय का एक उपबन्ध रखा है कि किसी ऐसे मामले में जिसमें उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील की गई हो और जिसमें विधि के निर्वचन का प्रश्न तो नहीं किन्तु अन्य प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों तो उच्चतम न्यायालय के नियमों के अधीन निर्मित एक साधारण न्यायाधीश मंडली उस अपील पर विचार करे। मैं कह नहीं सकता कि उस न्यायाधीश मंडली में दो न्यायाधीश होंगे अथवा तीन। यदि अपील को सुनने के पश्चात् वह न्यायाधीश मंडली यह प्रमाणित करे कि यह सच है कि संविधान के निर्वचन का सारवान प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है तो ही वह अपील पांच न्यायाधीशों की मंडली के सम्मुख रखी जा सकती है। पांच न्यायाधीशों की मंडली भी उस मामले में अन्तर्ग्रस्त सांविधानिक प्रश्न पर ही विचार करेगी और अन्य प्रश्नों पर विचार नहीं करेगी। सांविधानिक प्रश्नों पर निर्णय करने के उपरांत न्यायाधीश निर्देश करेंगे कि वह मामला उच्चतम न्यायालय की प्रारम्भिक न्यायाधीश मंडली के सम्मुख रखा जाये। उस न्यायाधीश मंडली में दो या तीन न्यायाधीश होंगे और वे मामले को निबटायेंगे।

मेरा पहला निवेदन यह है कि आज प्रातः मैंने अनुच्छेद 204 के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किया है उसे यदि हम स्वीकार कर लेंगे तो हम केवल संशोधन संख्या 42 में उल्लिखित अनुच्छेद 121 के खंड (2क) के परंतुक के सार की स्वीकार करेंगे। उसमें भी यह कहा गया है कि यदि उच्च न्यायालय को संतोष हो जाये तो वह मामले

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

को अपने पास मंगा सकता है, सांविधानिक विधि के सम्बन्ध में निर्णय कर सकता है और उसे ऐसे विषयों के निर्णय के लिये अधीन न्यायालय के न्यायाधीश के पास भेज सकता है, जिनमें केवल संसद निर्मित साधारण विधि के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। मेरे विचार से हम कोई ऐसी असाधारण अथवा नवीन बात नहीं करने जा रहे हैं जो हमने उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में न की हो। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि जिस प्रकार हमने अनुच्छेद 121 के खंड (2क) का परंतुक स्वीकार किया है उसी प्रकार यदि हम इसे भी स्वीकार कर लेंगे तो हम कोई बड़ी भारी त्रुटि अथवा पूर्व-निश्चय का खंडन न करेंगे...।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** श्रीमान्, मैं इस सम्बन्ध में स्पष्टीकरण चाहता हूं। कृपा करके मुझे यह बताया जाये कि क्या आपकी धारणा यह है कि अपील के समय किसी प्रश्न के उठने में और आरम्भिक न्यायालय मामले के लम्बित होने पर उस प्रश्न के उठने में कोई अन्तर नहीं है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं केवल संशोधन की रूप-रेखा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर रहा हूं। मेरा यह निवेदन है कि मैंने जो संशोधन उपस्थित किया है वह उसी परन्तुक के समान है, जिसे हमने अनुच्छेद 121 के खंड (2क) में प्रविष्ट किया है। इसलिये मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि हम अपने पूर्व निश्चय के विपरीत कोई बात नहीं करने जा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त दो प्रश्न और उठाये गये हैं। उनमें से एक 'निर्णय' शब्द के प्रयोग के सम्बन्ध में है। यह कहा गया है कि 'निर्णय' शब्द का विभिन्न प्रकार से निर्वचन हुआ है और यह भी कहा गया है कि जिस पक्ष के मामले को उच्च न्यायालय ने सांविधानिक प्रश्न के निर्णय के लिये अपने पास मंगाया हो वह उच्चतम न्यायालय के सम्मुख उपस्थित ही न हो सकेगा क्योंकि अनुच्छेद 110 में यह कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय में उच्च न्यायालय के निर्णय अथवा अन्तिम आदेश की ही अपील की जा सकेगी। तर्क यह है कि कोई निर्णय अनुच्छेद 110 के आशय के अनुसार निर्णय अथवा अन्तिम आदेश ही न समझा जाये। जब हमने अनुच्छेद 110 में 'निर्णय' शब्द को एक विशेष अर्थ में प्रयोग किया है अर्थात् इस अर्थ में प्रयोग किया है कि वह ऐसा निर्णय होगा जिसकी अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकेगी तो मेरी समझ में नहीं आता कि इस संशोधन में 'निर्णय' शब्द का वही निर्वचन क्यों नहीं किया जाता? यदि यह तर्क ठीक है तो 'निर्णय' शब्द के स्थान में 'विनिश्चय' शब्द रखने से इस आपत्ति का निराकरण हो सकता है। यह व्याख्या भी प्रविष्ट की जा सकती है कि ''अनुच्छेद 110 के उद्देश्य के लिये ''विनिश्चय'' से 'अन्तिम आदेश' का बोध होगा।'' मेरे विचार से यह कोई ऐसी कठिनाई नहीं है जो दूर नहीं हो सकती।

जहां तक अपील के प्रश्न का सम्बन्ध है, जिस पक्ष का मामला मंगाया जायेगा उसे अवश्य इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह जो कुछ चाहेगा करेगा। यदि किसी ऐसे मामले में, जिसे उच्च न्यायालय ने सांविधानिक प्रश्न के निर्णय के लिये अपने पास मंगाया हो उसने

अपना निर्णय सुना दिया हो तो वह पक्ष सीधे उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो सकता है और उस प्रश्न का निर्णय करा सकता है अथवा वह उस समय तक प्रतीक्षा कर सकता है जब तक अधीन न्यायाधीश सभी प्रश्नों का निर्णय न कर ले और उन प्रश्नों से सम्बन्धित तथ्य विषयक निर्णयों की अपील उच्च न्यायालय में न हो जाये और उसके सम्बन्ध में निर्णय न सुना दिया जाये और तब वह उस मामले को उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित कर सकता है। यदि संविधान के निर्वचन का प्रश्न आरम्भिक प्रश्न के समान ही हो और उसके सम्बन्ध में निर्णय होने पर सारे मामले के सम्बन्ध में निर्णय हो जाता हो तो किसी पक्ष के लिये यह बन्धन नहीं है कि वह किसी विशेष प्रक्रिया को ही स्वीकार करे। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि इन बातों का जिस पक्ष पर प्रभाव पड़ेगा वह सांविधानिक प्रश्न के अतिरिक्त अन्य प्रश्नों का निर्णय अधीन न्यायाधीश से कराने के स्थान पर तुरन्त ही उच्चतम न्यायालय में जायेगा और संविधान का निर्वचन करायेगा। इसमें मुझे कुछ भी कठिनाई नहीं दिखाई देती।

दूसरा प्रश्न यह है। मेरे मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने वहां बैठ कर कुछ कहा था। मैं उन्हें सुन नहीं पाया परन्तु उनसे बातचीत करने पर उन्होंने बताया कि उच्च न्यायालय को संविधान के निर्वचन विषयक प्रश्नों को और अन्य प्रश्नों को पृथक करने में कठिनाई का अनुभव हो सकता है और यह भी हो सकता है कि अन्य प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये और संविधान के निर्वचन के प्रश्न के सम्बन्ध में भी निर्णय करने के लिये उच्च न्यायालय को अन्य प्रश्नों पर भी विचार करना पड़े। यह भी कहा गया था कि यदि कोई छोटा मामला हो, किन्तु उसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो तो उच्च न्यायालय को उस छोटे मामले को अधीन न्यायालय के पास भेजने के स्थान पर उसे स्वयं उस मामले को निबटाने की शक्ति क्यों न दी जाये? इन दोनों प्रश्नों को हल करने के उद्देश्य से संशोधन में उच्च न्यायालय को मामले को स्वयं निबटाने की शक्ति प्रदान की गई है। मेरे विचार से जो कठिनाइयां बताई गई है उन्हें दूर करने के लिये यह व्यवस्था अपर्याप्त नहीं है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस संशोधन से अवश्य ही हमारे उद्देश्यों की पूर्त्ति होती है। इससे यह होगा और यही हम चाहते भी हैं कि जब उच्च न्यायालय मामले पर विचार करेगा तो उसे सभी प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्णय न करना होगा। वह केवल एक प्रश्न के सम्बन्ध में, अर्थात् संविधान के निर्वचन के प्रश्न के सम्बन्ध में निर्णय करेगा।

क्या मैं एक बात और कह सकता हूं? इसमें कोई सन्देह नहीं कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 24 के अधीन उच्च न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी मामले को अपने पास मंगाये और उसका निर्णय करे। किन्तु इस धारा 24 के अधीन यह कठिनाई उत्पन्न होती है कि यदि न्यायालय ने किसी मामले को अपने पास मंगाने का निश्चय किया तो उसे पूरे मामले को अपने पास मंगाना होता है। वह मामले के किसी अंश को अपने पास नहीं मंगा सकता किन्तु हमारा उद्देश्य यह है कि उच्च न्यायालय को मामले के उस अंश को मंगाने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये, जिसका सम्बन्ध संविधान के निर्वचन से हो। मेरा यह निवेदन है कि जब तक आप ऐसा ही कोई उपबन्ध नहीं रखते जैसा हम अनुच्छेद 204 के अधीन रख रहे हैं तब तक उच्च न्यायालय को संविधान के निर्वचन के प्रश्न को भी हल करने के लिये पूरे मामले को अपने पास मंगाना होगा।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

मैं एक बात और कहना चाहता हूं। आप यह अनुभव करेंगे कि मैंने जो संशोधन उपस्थित किया है उसकी शब्दावली पर ध्यानपूर्वक विचार करने के लिये कल से आज तक का समय पर्याप्त न था। इसीलिये मैं यह संशोधन उपस्थित कर रहा हूं क्योंकि मेरे विचार से, अनेक अनुच्छेदों को थोड़ी सी त्रुटियों के शोधन के लिये स्थगित रखना उचित नहीं है। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि यद्यपि मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है किन्तु मेरे विचार से उचित यह होगा कि मसौदा समिति को इसके लिये अवसर दिया जाये कि वह इस अनुच्छेद में जो दोष बताये गये हैं उनमें से यदि कोई हो तो उन्हें दूर कर सके और उसे इस सभा द्वारा स्वीकृत अन्य अनुच्छेदों के अनुरूप बना सके।

***अध्यक्ष:** अब मैं प्रोफेसर शाह के संशोधन संख्या 2674 पर मत लूंगा।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे विचार से डा. अम्बेडकर के संशोधन से इस संशोधन का निराकरण हो जाता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा प्रस्ताव पहले के अनुच्छेद के स्थान में एक अन्य अनुच्छेद प्रविष्ट करने का है। आप संशोधन संख्या 2674 को वापस ले सकते हैं।

***अध्यक्ष:** आपके संशोधन का उद्देश्य पहले के अनुच्छेद के स्थान में एक अन्य अनुच्छेद प्रविष्ट करना है। तब मैं आपके संशोधन पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 204 के स्थान में निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'204. *Transfer of certain cases to High Court*—If the High Court is satisfied that a case pending in a court subordinate to it involves a substantial question of law as to the interpretation of this Constitution the determination of which is necessary for the disposal of the case, it shall withdraw the case and may—

(a) either dispose of the case itself, or

(b) determine the said question of law and return the case to the court from which the case has been so withdrawn together with a copy of its judgment on such question, and the said court shall on receipt thereof proceed to dispose of the case in conformity with such judgment.' ''

[204]. *विशेष मामलों का उच्च न्यायालय को हस्तांतरण*—यदि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि उसके अधीन न्यायालय में लम्बित किसी मामले में

इस संविधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है जिसका निर्धारित होना मामले को निबटाने के लिये आवश्यक है तो वह उस मामले को अपने पास मंगा लेगा तथा—

(क) या तो मामले को स्वयं निबटा सकेगा, या

(ख) उक्त विधि-प्रश्न का निर्धारण कर सकेगा तथा ऐसे प्रश्न पर अपने निर्णय की प्रतिलिपि सहित उस मामले को उस न्यायालय को, जिससे मामला इस प्रकार मंगा लिया गया है, लौटा सकेगा तथा उसके प्राप्त होने पर उक्त न्यायालय ऐसे निर्णय का अनुसरण करते हुये उस मामले को निबटाने के लिये आगे कार्यवाही करेगा।'

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब यह मूल अनुच्छेद हो जाता है। इससे जितने भी संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनका निराकरण हो जाता है।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 204, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 204, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 205

***अध्यक्ष:** अब सभा अनुच्छेद 205 पर विचार करेगी। इसके सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर का एक संशोधन है अर्थात् संशोधन संख्या 2676।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 205 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'205. (1) Officers and servants and the expenses of the High Court—Appointments of officers and servants of a High Court shall be made by the Chief Justice of the Court or such other judge or officer of the Court as he may direct:

Provided that the Governor of the State in which the High Court has its principal seat may by rule require that in such cases as may be specified in the rule, no person not already attached to the Court shall

be appointed to any office connected with the Court save after consultation with the State Public Service Commission.

(2) Subject to the provision of any law made by the legislature of the State the conditions of service of officers and servants of a High Court shall be such as may be prescribed by rule made by the Chief Justice of the Court or by some other judge or officer of the Court authorised by the Chief Justice to make rules for the purpose:

Provided that the salaries, allowances and pensions payable to or in respect of such officers and servants shall be fixed by the Chief Justice of the Court in consultation with the Governor of the State in which the High Court has its principal seat.

(3) The administrative expenses of a High Court, including all salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the officers and servants of the Court and the salaries and allowances of the judges of the Court, shall be charged upon the revenues of the State, and any fees or other moneys taken by the Court shall form part of those revenues.' ''

[205. (1) *उच्च न्यायालयों के पदाधिकारी और सेवक और व्यय*—उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की नियुक्तियां न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति अथवा उसके द्वारा निर्दिष्ट उस न्यायालय का अन्य न्यायाधीश या पदाधिकारी करेगा:

परन्तु उस राज्य का राज्यपाल जिसमें न्यायालय का मुख्य स्थान है, नियम द्वारा यह अपेक्षा कर सकेगा कि ऐसी किन्हीं अवस्थाओं में, जैसी कि नियम में उल्लिखित हों, किसी ऐसे व्यक्ति को, जो पहले ही न्यायालय में लगा हुआ नहीं है, न्यायालय से सम्बन्धित किसी पद पर राज लोक-सेवा-आयोग से परामर्श किये बिना नियुक्त न किया जायेगा।

(2) राज्य के विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की सेवा की शर्तें ऐसी होंगी जैसा कि उस न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति अथवा उस न्यायालय का ऐसा न्यायाधीश

या पदाधिकारी जिसे मुख्य न्यायाधिपति ने उस प्रयोजन के लिये नियम बनाने को प्राधिकृत किया है, नियमों द्वारा विहित करे:

परन्तु इन पदाधिकारियों और सेवकों को, या के बारे में दिये जाने वाले वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा उस राज्य के राज्यपाल से परामर्श करके, जिसमें उच्च न्यायालय का मुख्य स्थान है, निश्चित किये जायेंगे।

(3) उच्च न्यायालय के प्रशासनीय व्यय जिनके अन्तर्गत उस न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों को, या के बारे में, दिये जाने वाले सब वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन हैं और न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते भी हैं, राज्य के राजस्व पर भारित हों तथा उस न्यायालय द्वारा ली गई फीसें और अन्य धन उस राजस्व का भाग होंगी।]

***अध्यक्ष:** एक संशोधन श्री कपूर का भी है।

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** श्रीमान्, इस संशोधन पर मेरा एक संशोधन है। यदि आपकी अनुमति हो तो मैं उसे उपस्थित करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** आप उसे उपस्थित कर सकते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

''संशोधन की सूची के संशोधन संख्या 2676 के सम्बन्ध में, प्रस्तावित अनुच्छेद 205 के खंड (2) के परन्तुक के स्थान में निम्नलिखित परन्तुक रखा जाये–

'Provided that the rules made under this clause shall, so far as they relate to salaries, allowances, leave or pensions, require the approval of the Governor of the State in which the High Court has its principal seat.' ''

(परन्तु इस खंड के अधीन बनाये गये नियमों के लिये, जहां तक कि वेतनों, भत्तों, छुट्टी या निवृत्ति-वेतनों से सम्बद्ध है, उस राज्य के राज्यपाल के जिसमें उच्च न्यायालय का मुख्य स्थान है, अनुमोदन की अपेक्षा होगी।)

श्रीमान्, ये उपबंध उच्चतम न्यायालय सम्बन्धी उपबंधों के समान ही हैं।

***अध्यक्ष:** श्री कपूर, इससे आपके संशोधन का आशय पूरा हो जाता है।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): जी, हां, श्रीमान्, इससे अब मेरे संशोधन की आवश्यकता नहीं रह गई है।

***अध्यक्ष:** मि. महबूब अली वेग के नाम से इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में दो संशोधन अर्थात् संशोधनों पर संशोधनों की छपी हुई सूची के संशोधन संख्या 141 और 142।

(संशोधन उपस्थित नहीं किये गये)

अब इस अनुच्छेद पर सामान्य वादानुवाद हो सकता है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह नहीं चाहता कि उच्च न्यायालयों की शक्तियां किसी प्रकार कम की जायें। श्रीमान्, मेरे विचार से वेतन, छुट्टी, निवृत्ति-वेतन आदि के सम्बन्ध में राज्यपाल से परामर्श करना आवश्यक है। यदि यहां राज्यपाल का अर्थ सपरिषद् राज्यपाल से नहीं है तो प्रधानमंत्री से परामर्श करना आवश्यक है। इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है—यद्यपि अच्छा तो यह होता कि इसका उल्लेख होता—कि राज्यपाल के स्वविवेक का ध्यान रखते हुए उससे उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों तथा अन्य सेवकों के वेतनों, भत्तों और निवृत्ति-वेतनों के सम्बन्ध में परामर्श करना चाहिये। श्रीमान्, एक अन्य उपबन्ध इस प्रकार है कि राज्य के विधान मंडल की तद्विषयक किसी विधि के अधीन सेवा की शर्तों को मुख्य न्यायाधिपति को विहित करना चाहिये। मैं नहीं चाहता कि राज्यपाल अथवा राज्यों के विधान मंडल प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के कार्य में किसी प्रकार हस्तक्षेप कर सकें। वास्तव में इस देश में एक ही सुगठित न्यायपालिका होनी चाहिये। सभी उच्च न्यायालय उच्चतम न्यायालय के अंग होने चाहिये। मैं नहीं चाहता कि उच्च न्यायालयों का प्रान्तीकरण हो। मैं यह भी नहीं चाहता कि कार्यपालिका के प्राधिकारी तथा राज्यपाल और विधान मंडल न्यायपालिका के कार्य में हस्तक्षेप कर सकें। यह सभी को विदित है कि प्रान्तीय सरकारों के विरुद्ध मेरी भावनाएं क्या हैं? यदि इन प्राधिकारियों का उच्च न्यायालय के प्रशासन में कुछ भी हाथ रहा तो प्रान्तीय उच्च न्यायालय स्वतंत्र न रह सकेंगे। इस सम्बन्ध में इस समय भी उत्तेजना है और यह अभियोग लगाया गया है कि कई मामलों में न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप हुआ है। श्रीमान्, मेरी यह निश्चित धारणा है कि राज्यों के विधान मंडलों और राज्यपालों से परामर्श करने के स्थान पर हमें संसद तथा राष्ट्रपति से परामर्श करने के लिये उपबंध रखना होगा। मैं यह जानता हूं कि इन उच्च न्यायालयों के प्रशासन व्यय प्रान्तीय राजस्व पर भारित होंगे किन्तु इस व्यय को केन्द्रीय राजस्व पर भारित करने से यह कठिनाई दूर हो सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रस्ताव को कार्यरूप में लाने के लिये केन्द्रीय और प्रान्तीय राजस्वों के साधनों के समायोजन की आवश्यकता होगी। किन्तु कार्यसाधक प्रशासन के हित में और देश में एक ही न्यायपालिका स्थापित करने हेतु जो भी कठिनाइयां उपस्थित हों उन्हें दूर करना ही होगा। इस दृष्टि से उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों तथा अन्य सेवकों के निवृत्ति-वेतनों, वेतनों, छुट्टी आदि के प्रश्नों के सम्बन्ध में यह व्यवस्था की जाये कि संसद और राष्ट्रपति उनको उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके हल करे।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर क्या आप कुछ कहना चाहते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** जी नहीं, श्रीमान्।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): अध्यक्ष महोदय, मैं माननीय डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित इस संशोधन का विरोध करना चाहता हूं। बाहर से यह बहुत ही निर्दोष दिखाई देता है किन्तु जहां तक न्यायपालिका की स्वतंत्रता का सम्बन्ध है इसका कई बातों पर प्रभाव पड़ेगा। यदि हम इस मसौदे के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को ओर ध्यान दें तो हमें यह स्पष्ट हो जायेगा कि हम लोकतंत्र के सिद्धांतों से विमुख हो रहे हैं और

सारी शक्ति कार्यपालिका और विधान मंडल में संकेन्द्रित कर रहे हैं अर्थात् हमारे प्रयत्नों के फलस्वरूप एक आरक्षी राज्य विकसित होने जा रहा हैं। इस अनुच्छेद का इतिहास भी अन्य अनुच्छेदों के समान ही है और आगे आने वाली पीढ़ियां ही इसका निर्णय करेंगी कि हम दिन प्रतिदिन बुद्धिमान होते जा रहे हैं अथवा हम सर्वमान्य लोकतंत्रात्मक सिद्धांतों की उपेक्षा कर रहे हैं और विधान मंडल को अधिकाधिक शक्ति प्रदान करते जा रहे हैं। यदि हम मूल मसौदे को देखें तो हमें ज्ञात होगा कि फरवरी 1948 में अनुच्छेद 205 का जो मसौदा तैयार किया गया था उसमें यह उपबंध था कि उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों के वेतन, भत्ते, निवृत्ति-वेतन आदि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति उस राज्य के राज्यपाल से परामर्श करके निश्चित करेगा, जिसमें उस उच्च न्यायालय का मुख्य स्थान हो। किन्तु नवम्बर में जब संशोधनों की यह सूची प्रकाशित हुई तो इसमें कुछ अन्तर था और इस अनुच्छेद का परन्तुक इस प्रकार था:

> ''परन्तु इन पदाधिकारियों और सेवकों को, या के बारे में, दिये जाने वाले वेतन, भत्ते और निवृत्ति-वेतन उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा उस राज्य के राज्यपाल से परामर्श करके, जिसमें उच्च न्यायालय का मुख्य स्थान है, निश्चित किये जायेंगे।''

मेरे विचार से यहां तक कोई हानि नहीं हुई है क्योंकि इसे परामर्श तक ही सीमित रखा गया है। किन्तु वर्तमान संशोधन इस प्रकार है:

> ''परन्तु इस खंड के अधीन बनाये गये नियमों के लिये, जहां तक कि वे वेतनों, भत्तों, छुट्टी या निवृत्ति-वेतनों से सम्बद्ध हैं, उस राज्य के राज्यपाल के जिसमें उच्च न्यायालय का मुख्य स्थान है, अनुमोदन की अपेक्षा होगी।''

इस प्रविष्टि का गहरा प्रभाव पड़ेगा यद्यपि ऊपर से यह बहुत ही साधारण प्रतीत होती है। लोगों की स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप होने पर उनकी रक्षा न्यायपालिका ही कर सकती है, इसलिये यदि उसकी स्वतंत्रता में हस्तक्षेप हो रहा हो तो वह चाहे कितने ही अंश में क्यों ने हो उसकी देख-रेख होनी चाहिये और उसे रोकने के लिये यथेष्ठ व्यवस्था करनी चाहिये। यह सभी स्वीकार करते हैं कि न्यायपालिका इतनी सशक्त नहीं है कि वह कार्यपालिका और विधान मंडल के हस्तक्षेप से अपनी रक्षा कर सके और इसलिये यदि विधान मंडल अथवा कार्यपालिका से उसका सम्बन्ध जोड़ा गया अथवा उसे उनके अधीन रखा गया तो उसकी स्वतंत्रता का अपहरण हो जायेगा। इसका हमेशा ही खतरा बना रहता है कि कार्यपालिका अथवा विधान मंडल उसे पंगु बना दे। मैं यह कह चुका हूं कि इस परिवर्तन के फलस्वरूप विधान मंडल को अधिक शक्ति प्रदान करने से न्यायालयों की स्वतंत्रता पर आघात होगा। मेरी यह धारणा है कि इस संशोधन में जिस परिवर्तन का सुझाव रखा गया है उससे प्रतिदिन साधारण विषयों के सम्बन्ध में न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच संघर्ष होता रहेगा। मुख्य न्यायाधिपति से राज्यपाल से अनुमोदन प्राप्त करने की अपेक्षा करने से वह हतप्रभ तो होगा ही किन्तु साथ ही उसे राज्यपाल से अधीन स्थिति स्वीकार करनी होगी। कम से कम मनोविज्ञान की दृष्टि से तो इस प्रक्रिया का यही प्रभाव होगा। यह उपबंध ही कि मुख्य न्यायाधिपति को राज्यपाल का अनुमोदन प्राप्त

[सरदार हुकुम सिंह]

करना होगा इसका प्रमाण है नियम एक दूसरे का ध्यान रखकर बनाये जायेंगे। क्या उसका इस सम्बन्ध में विश्वास नहीं किया जा सकता कि वह अनावश्यक व्यय करके राजकोष का धन नष्ट न करेगा? इसमें कोई संदेह नहीं है कि राजकीय का रक्षक राज्यपाल ही है किन्तु साथ ही न्यायपालिका भी नागरिकों की स्वतंत्रताओं की संरिक्षका है और इसलिये कोई ऐसी बात न करनी चाहिये जिससे उसकी स्वतंत्रता पर आघात हो। केवल परामर्श करना ही पर्याप्त है। मेरे विचार से यह संशोधन खतरनाक सिद्ध होगा और इसलिये मैं इसका विरोध करता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 205 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'205. *Officers and servants and the expenses of High Courts*—(1) Appointments of officers and servants of a High Court shall be made by the Chief Justice of the Court or such other judge or officer of the Court as he may direct:

Provided that the Governor of the State in which the High Court has its principal seat may by rule require that in such cases as may be specified in the rule, no person not already attached to the Court shall be appointed to any office connected with the Court save after consultation with the State Public Service Commission.

(2) Subject to the provisions of any law made by the Legislature of the State, the conditions of service of officers and servants of a High Court shall be such as may be prescribed by rules made by the Chief Justice of the Court or by some other judge or officer of the Court authorised by the Chief Justice to make rules for the purpose:

Provided that the rules made under this clause shall, so far as they relate to salaries, allowances, leave or pensions, require the approval of the Governor of the State in which the High Court has its principal seat.

(3) The administrative expenses of High Court, including all salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the officers and servants of the Court and the salaries and allowances of the judges of the Court, shall

be charged upon the revenues of the State, and any fees or other moneys taken by the Court shall form part of those revenues.'

(1) [229. *उच्च न्यायालयों के पदाधिकारी और सेवक और व्यय*—उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की नियुक्तियां न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति अथवा उसके द्वारा निर्दिष्ट उस न्यायालय का अन्य न्यायाधीश या पदाधिकारी करेगा:

परन्तु उस राज्य का राज्यपाल जिसमें न्यायालय का मुख्य स्थान है, नियम द्वारा यह अपेक्षा कर सकेगा कि ऐसी किन्हीं अवस्थाओं में, जैसी कि नियम में उल्लिखित हो, किसी ऐसे व्यक्ति को, जो पहले ही न्यायालय में लगा हुआ नहीं है, न्यायालय से सम्बन्धित किसी पद पर राज्य लोक-सेवा-आयोग से परामर्श किये बिना नियुक्त न किया जायेगा।

(2) राज्य के विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुये उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की सेवा की शर्तें ऐसी होंगी जैसे कि उस न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति अथवा उस न्यायालय का ऐसा अन्य न्यायाधीश या पदाधिकारी जिसे मुख्य न्यायाधिपति ने उस प्रयोजन के लिये नियम बनाने को प्राधिकृत किया है, नियमों द्वारा विदित करे:

परन्तु इस खंड के अधीन बनाये गये नियमों के लिये, जहां तक कि वे वेतनों, भत्तों, छुट्टी या निवृत्ति वेतनों से सम्बद्ध है, उस राज्य के राज्यपाल के जिसमें उच्च न्यायालय का मुख्य स्थान है, अनुमोदन की अपेक्षा होगी।

(3) उच्च न्यायालय के प्रशासनीय व्यय जिनके अन्तर्गत उस न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों को, या के बारे में, दिये जाने वाले सब वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन हैं और न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते हैं, राज्य के राजस्व पर भारित होंगे तथ उस न्यायालय द्वारा ली गई फीसें और अन्य धन उस राजस्व का भाग होंगी।]''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 205, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 205, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 206

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि यह अनुच्छेद निकाल दिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 206 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव गिर गया।

अनुच्छेद 206 संविधान से निकाल दिया गया।

अनुच्छेद 90–(*जारी*)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि अब वित्त-सम्बन्धी अनुच्छेद उठाया जाये। हम अनुच्छेद 90 पर विचार-विमर्श कर रहे थे और उसे अब उठा सकते हैं।

***अध्यक्ष:** जिस दिन हमने इस अनुच्छेद पर विचार-विमर्श स्थगित किया था उस दिन इसके सम्बन्ध में कई संशोधन थे। वे संशोधन 3, 4 और 6 हैं जो डा. अम्बेडकर के नाम से हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (ग) और (घ) के स्थान में निम्नलिखित उपखंड रखे जायें:

'(c) the custody of the Consolidated Fund or the Contingency Fund of India, the payment of moneys into or the withdrawal of moneys from any such fund;

(d) The appropriation of moneys out of the Consolidated Fund of India;

[(ग) भारत की संचित-निधि अथवा आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा, ऐसी किसी निधि में धन डालना अथवा उसमें से धन निकालना;

(घ) भारत की संचित-निधि में से धन का विनियोग;]''

श्रीमान् संशोधन संख्या 4 का आशय संशोधन संख्या 3 से हो जाता है और इसलिये मैं उसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

श्रीमान् मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (घ) और (ङ) में 'Revenues of India' (भारत का राजस्व) शब्दों के स्थान में 'Consolidated Fund of India' (भारत की संचित-निधि) शब्द रखे जायें।''

श्रीमान् इससे पंडित कुंजरू के संशोधन संख्या (5) का आशय भी पूरा हो जाता है और इसलिये उसकी अब आवश्यकता नहीं रह जाती।

श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं इस अवसर पर एक परिचयात्मक भाषण देना चाहता हूं ताकि सभा उन कतिपय परिवर्तनों से परिचित हो जाये जिनका सन्निवेश इन संशोधनों में तो नहीं है किन्तु जिनका सम्बन्ध उस वित्त-सम्बन्धी प्रक्रिया से है, जिसका अनुसरण वित्त-सम्बन्धी विषयों में करना होगा।

इस विषय के सम्बन्ध में जिन विभिन्न संशोधनों का मैंने प्रस्ताव किया है उनसे ये परिवर्तन होंगे। पहला परिवर्तन यह है कि बिना किसी विधि को प्रवर्तन में लाये हुये कोई कर नहीं लगाया जायेगा। यदि लोगों पर कोई कर लगाना होगा तो इसके लिये यह आवश्यक होगा कि उसकी संपुष्टि किसी विधि द्वारा हो। इस प्रकार का उपबंध अनुच्छेद 248 में है, जिस पर आगे चल कर विचार किया जायेगा। सभा के सम्मुख पूर्ण चित्र उपस्थित करने के लिये ही मैंने उसकी चर्चा की है। संविधान के वर्तमान मसौदे में इस प्रकार का कोई उपबंध नहीं था। दूसरी नई बात संचित-निधि का उल्लेख हैं। यह अनुच्छेद 248(क) द्वारा किया जायेगा और इस पर भी आगे चल कर विचार होगा। सम्भव है संसद एक आकस्मिकता निधि को भी स्थापित करना चाहे और इसलिये हम उसके सम्बन्ध में भी उपबंध रखना चाहते हैं। ये उपबंध नवीन अनुच्छेद 248-(ख) में रखे जायेंगे।

मेरे विचार से प्रथम उपबंध की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है, अर्थात् इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है कि कोई कर बिना विधि को प्रवर्त्तन में लाये हुये नहीं लगाया जायेगा। यह बहुत ही उपयुक्त उपबंध है। वास्तव में बिना संसद की स्वीकृति प्राप्त किये हुये कार्यपालिका को लोगों पर कर लगाने की शक्ति प्राप्त न होनी चाहिये। जहां तक संचित-निधि का सम्बन्ध है, यह कोई नया विचार नहीं है, केवल शब्दावली गई है। वर्तमान शब्दावली इस प्रकार है–''भारत के गवर्नर जनरल का लोक-लेखा''। यदि माननीय सदस्य ''कम्पाइलेशन आफ ट्रेजरी रूल्स, अंक 1'' नाम की पुस्तक को देखें तो उन्हें ज्ञात होगा कि ''संचित-निधि'' को भी ''लोक-लेखा' कहा गया है। मैं उसमें दी हुई परिभाषा को पढ़ कर सुनाता हूं: ''केन्द्रीय सरकार के लोक-लेखे से अभिप्रेत है संचित निधि, जिसमें अधिनियम की धारा 136 में परिभाषित गवर्नर जनरल का राजस्व-धन जमा किया जाता है और रखा जाता है और जिससे धन निकाल कर सरकार व्यय करती है अथवा उसकी ओर से व्यय किया जाता है।''

इसलिये ''संचित-निधि'' शब्दों के प्रयोग से केवल नाम में परिवर्तन हुआ है, क्योंकि इससे केन्द्रीय सरकार का लोक-लेखा ही अभिप्रेत है।

संचित-निधि की कल्पना एक महत्त्वपूर्ण धारणा पर आधृत है। इस सभा के सदस्यों की यह विदित ही होगा कि इंग्लिस्तान में संचित-निधि को स्थापित करने का विचार प्रथम बार 1777 में उठा था। उसे स्थापित करने का उद्देश्य क्या था इसे मैं बताऊंगा। आरंभ में संसद करों के लिये स्वीकृति देती थी और उन्हें सम्राट लगाता था। वही करों को संगृहीत करता था और जिस काम के लिये भी उचित समझता था व्यय करता था। प्राय: यह होता था कि सम्राट किन्हीं कामों के लिये कर लगाने की मांग करता था किन्तु भिन्न कामों में उसे व्यय कर देता था। करों के लिये स्वीकृति प्रदान करने के पश्चात् संसद का उन पर कुछ भी नियंत्रण नहीं रह जाता था। कुछ समय के पश्चात् संसद ने एक भिन्न प्रक्रिया का अनुसरण किया अर्थात् वह कर लगाने लगी और उसका विनियोग एक विशेष कार्य के लिये करने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि जब आय व्ययक को स्वीकार करने का समय आता था तो कुछ भी धन शेष नहीं रह जाता था, क्योंकि विभिन्न करों का विनियोग विभिन्न कार्यों के लिये पहले ही से हो जाता था। इस प्रकार आय-व्ययक में उल्लिखित सामान्य कार्यों के लिये कुछ भी धन शेष नहीं रह जाता था।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

इस प्रकार विभिन्न करों के विभिन्न कार्यों के लिये विनियोग से जो धन नष्ट हो जाता था उसे बचाने के लिये इसकी आवश्यकता दिखाई दी कि करों से अथवा अन्य प्रकार से जो राजस्व प्राप्त हो उसका विशेष कार्यों के लिये विनियोग न करके उसे एक निधि में संचित किया जाये ताकि आय-व्ययक पर निर्णय करते समय संसद को एक निधि प्राप्त हो जिसे वह व्यय कर सके। अर्थात् ऐसी व्यवस्था करने के लिये कि संसद-निर्मित विधि द्वारा विशेष कार्यों में ही करों से प्राप्त सब धन बिना लोगों की सामान्य आवश्यकताओं का ध्यान रखे हुये ही व्यय न हो, यह आवश्यक है कि एक संचित-निधि स्थापित की जाये। इसलिये मुझे आशा है कि यह सभा संचित-निधि सम्बन्धी उपबन्ध स्वीकार करने में किसी कठिनाई का अनुभव न करेगी क्योंकि उसो स्थापित करना बहुत आवश्यक है। मेरा तो यह कहना है कि कोई भी संविधान ऐसा नहीं है जिसमें संचित-निधि के सम्बन्ध में उपबंध न हों। यदि आप आस्ट्रेलिया, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, आयरलैंड तथा अन्य देशों के संविधानों की परस्पर तुलना करेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि उनमें से प्रत्येक में इस आशय का एक उपबन्ध है कि करों से अथवा अन्य प्रकार संगृहीत सब निधियों का समावेश संचित-निधि में होगा। इसलिये हम कोई नई बात करने नहीं जा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त एक अन्य उपबंध हम राष्ट्रपति द्वारा प्रमाणित अनुसूची के लिये न रख कर विनियोग अधिनियम के लिये रख रहे हैं। यदि माननीय सदस्य संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 94 को देखेंगे तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि वर्तमान प्रक्रिया क्या है? इस समय इस प्रकार कार्य किया जाता है। राष्ट्रपति अर्थात् शासनारूढ़ सरकार अनुच्छेद 92 के अधीन संसद के सम्मुख एक वित्त-विषयक विवरण विशेष रूप में उपस्थित करती है। इस विशेष रूप का वर्णन अनुच्छेद 94 के उपखंड (2) में है। व्यय ही श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। एक श्रेणी उस व्यय की होती है जो भारत-राजस्व पर भारित होता है और एक श्रेणी उस व्यय की होती है जो भारत-राजस्व पर अर्थात् संचित-निधि पर भारित नहीं होता है। इसके पश्चात् अनुच्छेद 93 में विहित कार्यप्रणाली के अनुसार कार्य होता है। अनुच्छेद 93 में विहित कार्यप्रणाली इस प्रकार है। संसद वित्त-विषयक विवरण के एक-एक शीर्षक, एक-एक उपशीर्षक तथा एक-एक विषय पर विचार करती है और कार्यपालिका द्वारा उपबन्धित धनराशि को स्वीकार करती है अथवा उसे कम करती हैं। यह किसी कर्त्तन-प्रस्ताव पर आधृत सभा के संकल्प द्वारा किया जाता है। इतना हो जाने पर वर्तमान प्रक्रिया के अधीन अनुच्छेद 94 का अनुसरण किया जाता है अर्थात् राष्ट्रपति यह प्रमाणित करता है कि संसद के सम्मुख जो विभिन्न शीर्षक रखे गये थे उनके सम्बन्ध में सभा ने क्या उपबन्धित किया है। नवीन उपबंध इस प्रकार है कि राष्ट्रपति के प्रमाणीकरण के स्थान में विधान मंडल एक समुचित विनियोग अधिनियम स्वीकार करे।

संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 94 में विहित उपबंधों के स्थान में विनियोग-विधेयक की प्रक्रिया को रखने के पक्ष में यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है। विधान मंडल प्रदायों पर मत देकर उन्हें स्वीकार करता है और इसलिये यह उचित ही है कि उसने जो कुछ

स्वीकार किया है उसे अधिनियम का रूप दिया जाये। प्रदायों पर मत देकर उन्हें स्वीकार करने का जो कार्य विधान मंडल ने किया हो उसका प्रमाणीकरण राष्ट्रपति अर्थात् कार्यपालिका के लिये क्यों छोड़ा जाये? हमें मुख्यत: इसी प्रश्न पर विचार करना है। वित्त के सम्बन्ध में संसद सर्वशक्तिसम्पन्न है क्योंकि अनुच्छेद 93 के उपबंधों के अधीन बिना संसद की स्वीकृति के धन व्यय नहीं किया जा सकता। यदि किसी शीर्षक के अधीन किसी व्यय को संसद ने स्वीकार किया हो तो उसे प्रमाणित करने के लिये समुचित प्राधिकारी संसद ही है न कि राष्ट्रपति। इसलिये संविधान के इस मसौदे के अनुच्छेद 94 में विहित प्रक्रिया के स्थान में विनियोग-अधिनियम की प्रक्रिया रखी जा रही है।

मैं यह कहना चाहता हूं कि भारत सरकार के 1935 के अधिनियम के अनुच्छेद 94 का समुचित स्थान था क्योंकि गवर्नर जनरल को इसे प्रमाणित करने का अधिकार था कि वह स्वविवेक से इसका निर्णय करे कि अपने कृत्यों के पालनार्थ उसे कितने धन की आवश्यकता होगी। जिन कृत्यों के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल स्वविवेक से धन व्यय करना चाहता था वे संसद के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं आते थे। उसे धनराशि में परिवर्तन करने का अथवा उसे बढ़ाने का अधिकार प्राप्त था। इसलिये यह आवश्यक था कि प्रमाणीकरण के लिये अन्तिम प्राधिकारी गवर्नर जनरल ही हो क्योंकि उसे स्वतंत्र रूप से यह शक्ति प्राप्त थी कि वह अपने विशेष कृत्यों के निर्वहन के लिये आय-व्ययक में अपनी इच्छानुसार उपबंध रखे। हमारे नवीन संविधान के अधीन राष्ट्रपति को अपने व्यक्तिगत निर्णय से, अथवा स्वविवेक से, किन्हीं भी कृत्यों का निर्वहन न करना होगा। इसलिये कतिपय सेवाओं के व्यय के लिये धन प्रदान करने में उसका कोई हाथ न होगा। इस दशा में नवीन संविधान के अधीन प्रमाणीकरण की प्रक्रिया बिल्कुल अनावश्यक है। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि जिन देशों में भी संसदात्मक शासन है वहां, अर्थात् कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका और इंग्लिस्तान में विनियोग-प्रक्रिया प्रयोग में है। मैं यह भी बताना चाहता हूं कि जब 1935 में भारत सरकार के अधिनियम पर विचार-विमर्श हो रहा था तो भारत-मंत्री ने स्वयं यह प्रस्ताव किया था कि विधान सभा द्वारा स्वीकृत व्यय का वैधकरण विनियोग अधिनियम द्वारा होगा न कि प्रमाणीकरण द्वारा। किन्तु उस समय की भारत सरकार को विनियोग अधिनियम का विचार मान्य न हुआ और उसका कारण यह था कि गवर्नर जनरल को अपने कृत्यों के निर्वहन के लिये आय-व्ययक में धनराशि उपबन्धित करने की शक्ति प्राप्त थी। जैसा कि मैं कह चुका हूं अन्यथा भारत मंत्री स्वयं इस प्रस्ताव के पक्ष में था किन्तु उसके प्रस्ताव को भारत सरकार ने 1935 में अस्वीकार कर दिया। मेरा यह निवेदन है कि अब इस प्रकार के कृत्य को बनाये रखने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इससे कार्यपालिका को धनराशि उपबन्धित करने तथा व्यय करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। मेरे विचार से हमें अपनी प्रक्रिया को उन सभी देशों की प्रक्रिया के अनुरूप बनाना चाहिये जहां संसद धन-व्यय करने की स्वीकृति प्रदान करने के सम्बन्ध में सर्वशक्ति सम्पन्न है।

एक अन्य नवीन अनुच्छेद, जो हमने प्रविष्ट किया है, लेखानुदान के सम्बन्ध में है। इसकी व्याख्या करना आवश्यक है कि हमने उसे क्यों प्रविष्ट किया है। इस सम्बन्ध में भी मैं सभा का ध्यान मसौदे के अनुच्छेद 93 की ओर दिलाता हूं। अनुच्छेद 93 के अधीन

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

किसी भी सेवा के लिये तब तक धन न दिया जा सकता है और न व्यय किया जा सकता है जब तक कि संसद आय-व्ययक के पूरे विवरण को स्वीकार न कर ले। यदि आप अनुच्छेद 93 को पढ़ेंगे तो आप देखेंगे कि उसका आशय यही है। आय-व्ययक को शीर्षकों, उपशीर्षकों ओर विषयों के अधीन रखना होता है। संसद को इन शीर्षकों, उपशीर्षकों और विषयों की स्वीकार करके आय-व्ययक को स्वीकार करना होता है। आय-व्ययक को स्वीकार करने का यही अर्थ है। यह सभी को विदित है कि आय-व्ययक का आकार वृहत् होता है और उसमें 250 करोड़ जैसी धनराशि का विवरण होता है और वह विभिन्न विषयों के अधीन वितरित होती है। यदि अनुच्छेद 93 को वर्तमान रूप में रहने दिया जायेगा, अर्थात् यदि यह उपबंध रहने दिया जायेगा कि जब तक संसद पूरे विवरण को स्वीकार न कर ले तब तक किसी प्रकार का धन व्यय नहीं किया जा सकता और यदि यह उपबंध भी रहने दिया गया कि प्रत्येक राजकीय वर्ष की समाप्ति के पूर्व आय व्ययक स्वीकार कर लिया जाना चाहिये, तो आय व्ययक पर विचार-विमर्श के लिये बहुत कम समय रह जायेगा। मुख्यत: इसलिये बहुत कम समय रह जायेगा कि अनुच्छेद 93 के उपबंधों के अधीन जब तक आय व्ययक का पूरा विवरण स्वीकार न कर लिया जाये तब तक धन व्यय नहीं किया जा सकता। इसलिये या तो आप पूरे आय-व्ययक पर विचार-विमर्श करने के अपने अधिकार को त्याग दीजिये अथवा अनुच्छेद 93 में परिवर्तन कीजिये अथवा अनुच्छेद 93 में अपवादार्थ एक अन्य उपबंध रखिये। एक संशोधन द्वारा लेखानुदान की जिस प्रक्रिया को प्रस्तुत करने का विचार है, उसके अधीन संसद उस वर्ष की सेवाओं पर कुछ समय के लिये, उदाहरणार्थ दो महीने के लिये, धन व्यय करने के लिये कार्यपालिका को एकमुष्ट अनुदान के रूप में स्वीकृति प्रदान कर सकेगी ताकि इन दो महीनों में संसद सरकार के आय व्ययक सम्बन्धी तथा वित्त सम्बन्धी उपबंधों पर यदि पूर्ण रूप से नहीं तो कम से कम विस्तृत रूप से, विचार कर सके। यदि आप लेखानुदान के लिये, अर्थात् विपक्षी दल के नेता और सरकार के बीच किसी करार के आधार पर दो या तीन महीने के व्यय के लिये कार्यपालिका को दी जाने वाली धनराशि के लिये लेखानुदान अर्थात् एकमुष्ट अनुदान के लिये, उपबंध नहीं रखेंगे तो आपको आय व्ययक पर विचार-विमर्श करने के लिये उतना ही समय मिल सकेगा जितना कि इस समय मिलता है। सभा को स्मरण होगा कि पिछली बार इस सभा के कई सदस्यों की यह धारणा थी कि आय-व्ययक को स्वीकार करने में बहुत जल्दी दिखाई गई थी और लोगों को विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श करने के लिये सात-आठ दिन से अधिक समय नहीं दिया गया था और मुखबंध के साधन का भी उपयोग किया गया था। इसलिये यदि सभा यह चाहती है कि उसे आय व्ययक के विवरण पर तथा वित्त-सम्बन्धी उपबंधों पर विचार-विमर्श के लिये अधिक समय मिले तो संविधान में कोई ऐसा उपबंध रखना होगा जिसके अधीन वह कार्यपालिका को संचित-निधि से निकाल कर एक मुष्ट धन दे सके ताकि वह उसे दो तीन महीने तक व्यय कर सके और इस बीच सभा आय व्ययक के विवरण पर विचार-विमर्श कर सके। चूंकि अनुच्छेद 93 के उपबंध बहुत निर्बन्धक है और वह इस कारण कि जब तक आय व्ययक के पूरे विवरण को स्वीकार न कर लिया जाये तब तक किसी प्रकार का धन व्यय नहीं किया जा सकता है, इसलिये हमें अनुच्छेद 93 के उपबंधों के सम्बन्ध में कुछ अपवाद रखने होंगे। ये अपवाद ''लेखानुदान-सम्बन्धी उपबंधों'' को स्थान देकर ही

किये जा सकते हैं। संविधान में मसौदे में हमने यही तीन मुख्य परिवर्तन किये हैं। श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं अपने संशोधनों को उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्ष:** क्या कोई सज्जन बोलना चाहते हैं?

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, अभी तो भाषण दिया गया है, उसमें जिन नये नामों को हम अपनाने जा रहे है। उनकी कुछ व्याख्या की गई थी तथा उन उपबंधों की भी चर्चा की गई थी जिनके सम्बन्ध में इस समय तक विचार नहीं किया गया था। श्रीमान्, हमारे सामने जिन अनुच्छेदों का मसौदा है, उसकी रूपरेखा 1935 के अधिनियम के आधार पर निश्चित की गई थी। अब माननीय डा. अम्बेडकर उनमें कुछ परिवर्तन करना चाहते हैं ताकि वित्त-विषयक प्रक्रिया, इंग्लिस्तान की संसद की प्रक्रिया तथा विभिन्न अधिराज्यों की तद्रूप प्रक्रिया के अनुरूप हो सके। इसलिये हमसे ऐसे नामों तथा शब्दों को स्वीकार करने के लिये कहा जा रहा है जिनसे सभा परिचित नहीं है। विद्वान् डाक्टर महोदय ने अपने प्रस्तावों की बहुत ही संक्षिप्त तथा विशुद्ध व्याख्या की है किन्तु यदि इस सभा के कई सदस्य उसके पूरे अर्थ को नहीं समझ पाये हैं तो मैं उनकी बुद्धि को दोष नहीं देता हूं। (*हंसी*) पहली बार हम भारत राजस्व जैसी सुबोध, सुस्पष्ट तथा सुपरिचित पदावलि के स्थान में (क्योंकि अभी तक यही पदावलि विभिन्न प्रयोजनों के लिये प्रयोग में आती रही है और इसे सभी समझते रहे हैं) 'संचित-निधि' पदावलि प्रयोग करने जा रहे हैं। श्रीमान्, जो भाषण दिया गया है उससे यह समझना बहुत कुछ असम्भव ही है कि इस नाम को बदलना क्यों आवश्यक है। प्रयोजन तो बताया गया है किन्तु मेरा समाधान नहीं हुआ है। मेरी समझ में नहीं आता कि यदि हम ''भारत राजस्व'' पदावलि का ही प्रयोग करते रहेंगे तो इससे क्या हानि होगी क्योंकि इस पदावलि को रहने देने से भी वित्त-विषयक प्रक्रिया में जिन कठिनाइयों को अनुभव किया गया है उन्हें दूर किया जा सकता है। मुझे विश्वास नहीं होता कि इस प्रयोजन के लिये नाम बदलना आवश्यक है। नि:संदेह डा. अम्बेडकर इसके लिये चिन्तित हैं कि आय व्ययक को एक निश्चित तिथि तक पारित करने में कोई निर्वचन हो। यह कहा गया है कि इस सम्बन्ध में कुछ ढील मिलनी चाहिये और भारतीय संसद को इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि यदि वह चाहे तो पहली अप्रैल से पश्चात् भी आय-व्ययक पर तथा व्यय पर महीनों तक विचार-विमर्श करती रहे क्योंकि वर्तमान प्रणाली के अधीन उस तिथि तक आय व्ययक का अनुमोदन हो जाना चाहिये। परन्तु यदि केवल यही कठिनाई दूर करनी है तो मेरे विचार से इसके लिये इन सभी अनुच्छेदों की रूपरेखा को ही बदलना आवश्यक नहीं है। केवल इस उपबन्ध के कारण कि चाहे आय-व्ययक पर विचार-विमर्श हुआ हो या न हुआ हो और चाहे वह पारित हुआ हो या न हुआ हो कार्यपालिका को प्रतिदिन का प्रशासन-कार्य करते रहना चाहिये, मेरे विचार से, इतने अनुच्छेदों में परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु यदि हम इसके लिये चिन्तित हैं कि हम उसी लीक पर चलें जिस पर इंग्लिस्तान की कामन्स सभा और विभिन्न अधिराज्यों की संसदें चलती हैं तो नि:संदेह प्रस्तावित परिवर्तनों को स्वीकार करना आवश्यक होगा।

नाम को बदलने से और ''भारत की संचित-निधि'' शब्दों को प्रविष्ट करने से एक साधारण व्यक्ति यह निर्वचन करेगा कि यह कोई ऐसी निधि होगी जो भारत-राजस्व से

[डा. पी.एस. देशमुख]

भिन्न होगी उससे उपर के स्तर में स्थित होगी। मुझे तो ''भारत की संचित-निधि'' शब्दों को प्रविष्ट करने का कोई अर्थ नहीं दिखाई देता। इसके अतिरिक्त डा. अम्बेडकर को इसी समय या आगे चल कर ''लेखानुदान'', ''प्रत्ययानुदान'' जैसी पदावलियों को भी स्वीकार करना होगा क्योंकि इन्हें राज्य के वित्त-सम्बन्धी कारोबार तथा आदान-प्रदान के सम्बन्ध में स्वीकार करना होगा। मैं कामन्स सभा की प्रक्रिया का निदेश कर रहा हूं जहां संचित-निधि के अतिरिक्त अन्य भी कई बातें हैं जिन्हें हमें किसी न किसी समय अवश्य ही स्थान देना होगा। डा. अम्बेडकर ने लेखानुदान की यह व्याख्या की है कि वह किसी विभाग के वार्षिक व्यय की पूर्ण तथा विस्तृत विवरता के साथ दी जाने वाली मंजूरी के पहले उसके व्यय के प्राक्कलन के आधार पर दिया जाने वाला अग्रिम धन है। इसके अतिरिक्त प्रत्यानुदान के लिये भी उपबंध रखना होगा। यद्यपि अभी उसकी व्याख्या नहीं की गई है किन्तु आगे चल कर उसे भी प्रविष्ट करना होगा। इंग्लिस्तान की संसद ने उसकी इस प्रकार परिभाषा की है कि ''वह एक अप्रत्याशित मांग होगी जो इंग्लिस्तान के राजस्व पर भारित होगी जैसे कि साम्राज्य की प्रतिरक्षा अथवा सैनिक सेवा के प्रयोजन के लिये।'' ''सेवा की महत्ता तथा उसके अनिश्चित रूप के कारण यह मांग उस विवरण के साथ नहीं की जा सकती जो अपेक्षित कुछ धन की मांग के आवेदन-पत्र पर आधृत तथा संसद के सम्मुख उपस्थित की जाने वाली साधारण प्राक्कलन में दी जाती है, इत्यादि।''

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, हम बहुत कुछ उसी प्रक्रिया को स्थान देंगे जो इंग्लिस्तान संसद में प्रयुक्त है। मुझे अभी इस सम्बन्ध में पूर्णतया समाधान नहीं हुआ है कि हमें अपनी वित्त-विषयक आदान-प्रदान की प्रणाली को बदल देना चाहिये क्योंकि वह समय की कसौटी पर कसी जा चुकी है। इस कठिनाई के अतिरिक्त अप्रैल तक विचार-विमर्श समाप्त नहीं हो पाता अभी तक हमारे सामने और कोई कठिनाई उपस्थित नहीं हुई है। यदि विद्वान डाक्टर महोदय यह कह सकते हैं कि जब तक हम इस व्यवस्था में परिवर्तन नहीं करते तब तक हमें ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा जिन्हें हल ही नहीं किया जा सकता और भारत की स्वाधीन संसद के लिये कार्य करना ही असम्भव हो जायेगा, तभी हम उनकी प्रार्थना को तथा उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर सकते हैं। श्रीमान्, यह मेरी समझ में नहीं आता कि बिना संचित निधि को स्थापित किये हुये, बिना प्रत्ययानुदान के लिये उपबंध रखे हुये और बिना लेखानुदान के लिये उपबंध रखे हुये भारत के वित्त का प्रबंध करना असम्भव हो जायेगा। जो पदावलियां प्रचलित हैं वे सभी को विदित हैं और जो प्रक्रिया चलन में है वह भी सुस्थापित है। मैं बिल्कुल ही नई पदावलियों को स्वीकार करने की अपेक्षा पहले की पदावलियों को ही तथा पहले के उपबंधों को ही प्रयोग में लाना अधिक पसन्द करूंगा। मैं यह इस कारण कह रहा हूं कि प्रस्तावक महोदय के भाषण को ध्यानपूर्वक सुनने पर भी मैं यह नहीं समझ पाया हूं कि इन अनुच्छेदों की रूपरेखा को ही बदलना क्यों आवश्यक है। मैं यह कह चुका हूं कि एक कठिनाई के अतिरिक्त हमारे सामने कोई भी ऐसी कठिनाई नहीं है जो वर्तमान उपबंधों से अथवा मसौदे

के उपबंधों से दूर नहीं हो सकती है। इसलिये, श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि उचित यही होगा कि हम सुपरिचित पदावलि तथा प्रक्रिया को रहने दें। आखिर इस प्रक्रिया में कोई ऐसी पेचीदा बात तो नहीं है। आधारभूत सिद्धांत यह है कि जब तक संसद की मंजूरी न मिल जाये किसी राज्य के राजस्व का विनियोग न हो। इस उपबंध के सम्बन्ध में मेरे मित्र श्री सिधवा ने भी इस पर जोर दिया कि महालेखापरीक्षक को भी धन के किसी भी आदान-प्रदान को तब तक स्वीकार न करना चाहिये जब तक उसे यथोचित स्थान न दिया गया हो और संसद द्वारा उसका अनुमोदन न हो गया हो। इन सब बातों का अर्थात् इसका कि बिना संसद की मंजूरी के किसी व्यय के लिये अनुदान न दिया जायेगा और धन व्यय नहीं किया जायेगा, वर्तमान उपबंधों से हनन नहीं होता है और इसलिये मेरा यह सुझाव है कि यदि संभव हो तो हम इन नई पदावलियों को स्वीकार न करें क्योंकि भले ही वे इंग्लिस्तान की संसद के लिये उपयोगी हों किन्तु हमारे लिये उनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। एक विदेशी सरकार के अधीन भी हम अपने वित्त का समुचित प्रबन्ध कर सके हैं। उस काल का एक भी ऐसा उदाहरण नहीं दिया जा सकता जैसा कि भारत की स्वाधीन संसद के सम्मुख रखा गया था, जब कि बिना संसद को बताये हुये अथवा अन्यत्र उल्लेख किये हुये करोड़ो रुपया का विनियोग किया गया था। इस प्रकार की आकस्मिकता का सामना अंग्रेजों के काल में भी नहीं करना पड़ा था यद्यपि इन्हीं उपबंधों के अधीन सारे देश का वित्त-सम्बन्धी प्रशासन होता था। इसलिये मेरी यह धारणा है कि यदि पुरानी पदावलि को रखना सम्भव हो और हम अपने को उन्हीं तक सीमित रखें तो अपरिचित उपबंधों को प्रविष्ट करने की अपेक्षा पुराने उपबंधों को ही रहने देना श्रेयस्कर होगा। मेरा यह विचार है कि संसद के कई वकील सदस्यों के विभिन्न निर्वचनों तथा व्याख्याओं से भी हम बहुत कठिनाई में पड़ जायेंगे। जिस कठिनाई की मैं चर्चा कर चुका हूं, यदि उसके अतिरिक्त और कोई कठिनाई नहीं है तो मुझे इसका समाधान नहीं हो पाया है कि पूर्ण रूप-रेखा को ही बदलना आवश्यक है।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, मैं अपने तीस वर्ष के संसद के अनुभव के आधार पर बिना किसी अतिशयोक्ति के यह कह सकता हूं कि धन-विधेयकों तथा आय-व्ययकों पर विचार-विमर्श करने के लिये विभिन्न विधान मंडलों में जिस प्रक्रिया तथा प्रणाली का अनुसरण किया जाता है वह हास्यास्पद तो है ही परन्तु साथ ही उससे लोगों का समय भी नष्ट होता है। मुझे ज्ञात नहीं है कि किसी भी विधान मंडल में कोई सदस्य अभी तक आय-व्ययक पर विचार-विमर्श होते समय किसी शीर्षक के अधीन व्यय की किसी धनराशि को कम कर सका है। 1935 के अधिनियम के अधीन और उसके पूर्व भी जहां तक राज्य के वित्त का सम्बन्ध था, सारी शक्ति कार्यपालिका में निहित होती थी। केवल संसार को दिखाने के लिये ही मांगें और आय विधान मंडल के सामने रखे जाते थे और कुछ दिन के विचार-विमर्श के उपरांत विधान मंडल को व्यय के सम्बन्ध में अथवा आय के सम्बन्ध में सभी शीर्षकों को स्वीकार कर लेना होता था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् दो आय-व्ययकों के सम्बन्ध में संसद में हमने पहले की ही प्रक्रिया को स्वीकार किया। यद्यपि पिछले सत्र में बहुत शिकायत करने पर विचार-विमर्श के लिये कुछ दिन दिये गये थे किन्तु हम आय-व्ययक में वर्णित आय के सम्बन्ध में अथवा व्यय के सम्बन्ध में कुछ भी महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर सके और न कोई सुझाव

[श्री आर.के. सिधवा]

ही को प्रविष्ट करा सके। इसलिये मैं डा. अम्बेडकर के उपस्थित संशोधन का स्वागत करता हूं। यह बहुत ही उपयुक्त संशोधन है और वास्तव में मुझे अपने मित्र डा. देशमुख के इस कथन से आश्चर्य हुआ कि वर्तमान प्रणाली में अथवा नामावली में परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। बिना विधान मंडल के कुछ कहे सुने ही करोड़ों रुपये संगृहीत किये गये और करोड़ों व्यय किये गये। इस अनुच्छेद के प्रारम्भिक मसौदे के अधीन भी, मैं यह कह सकता हूं कि सदस्यों को धन-विधेयकों अथवा आय-व्ययक पर निर्णय करने का कोई अवसर नहीं मिलता। इसलिये यह संशोधन उचित अवसर पर ही उपस्थित किया गया है।

डा. देशमुख ने अपना तर्क उपस्थित करते हुये यह कहा था कि ये सब बातें संसद के लिये छोड़ देनी चाहिये। इस प्रकार के विषय संसद के लिये नहीं छोड़े जाने चाहिये बल्कि इनका संविधान में ही समावेश होना चाहिये। डा. अम्बेडकर के संशोधन उपस्थित करने के पश्चात् एक मंत्री महोदय ने खुली तौर से यह कहा कि वर्तमान प्रक्रिया दोष मुक्त है और डा. देशमुख के समान उन्होंने भी कहा कि किसी प्रकार के संशोधन की आवश्यकता नहीं है। मुझे यह ज्ञात है कि यदि सदस्यों को कुछ छूट अथवा विशेषाधिकार दिये जायेंगे तो मंत्री आपत्ति करेंगे ही क्योंकि दो सत्रों के अपने अनुभव से मैं यह कह सकता हूं कि मंत्री तो यह चाहते हैं कि जितनी जल्दी आय-व्ययक पर विचार-विमर्श समाप्त हो जाये उतना अच्छा हो क्योंकि इस अवसर पर उनकी आलोचना होती है। यदि यह संसद के निर्णय के लिये छोड़ दिया गया तो मुझे इसका विश्वास है कि सब मंत्री एक हो कर अथवा तत्कालीन सरकार संगठित होकर इस प्रयोजन के लिये जो भी विधि बनाई जायेगी उसका विरोध करेगी। इसलिये यह समुचित ही है कि इस प्रकार का उपबंध संविधान में प्रविष्ट किया जाये। जहां तक राज्य के वित्त का सम्बन्ध है कोई ऐसी कमी न रहने दी जानी चाहिये जिससे आगे की कोई सरकार लाभ उठाये।

आय-व्ययक पर विचार-विमर्श होते समय क्या होता है? किसी महत्त्वपूर्ण वित्त-सम्बन्धी विषय पर विचार प्रकट करने के लिये एक सदस्य को पांच या दस मिनट मिलते हैं। इतने समय में वह अपने विचार सभा के सम्मुख समुचित रूप से तथा स्पष्ट रूप से नहीं रख सकता है। कई सदस्य बोलना चाहते हैं और मांगों पर विचार करने के लिये जो सात दिन दिये जाते हैं उस समय में कुछ भी नहीं हो पाता। पिछले सत्र में सदस्यों के चीख पुकार करने पर तीन दिन और दिये गये किन्तु मैं यह स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूं कि ये तीन दिन भी सदस्यों को केवल अपने विचार व्यक्त करने के लिये दिये गये और कोई ठोस काम नहीं हो पाया। हम यह चाहते हैं कि कार्यपालिका जिस शीर्षक के अधीन भी धन व्यय करती है उसके सम्बन्ध में सदस्यों को मतप्रकाश का पूर्ण अवसर मिलना चाहिये। दुर्भाग्य से बहुत कम सदस्य आय-व्ययक में दिलचस्पी रखते हैं। सम्भवत: वे उसे समझ नहीं पाते हैं। वित्त का विषय बहुत पेचीदा विषय होता है और सदस्य स्पष्टत: कुछ नहीं समझ पाते। कार्यपालिका आकस्मिकता से शीर्ष के अधीन और अन्य शीर्षकों के अधीन लाखों रुपयों का व्यय दिखाती है और उसका कोई विवरण नहीं देती है। सभा को उसे स्वीकार करना होता है। क्या अब भी आप कार्यपालिका को इस प्रकार की शक्ति देना चाहते हैं। जब तक सदस्यों को सभा के सम्मुख अपने विचार व्यक्त

करने का अवसर न दिया जायेगा तब तक हम सरकार को किस प्रकार प्रभावित कर सकेंगे? किसी भी सदस्य का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने विचारों को तथा अपने निर्वाचक मंडल के विचारों को सभा के सम्मुख रखे अन्यथा वह विधान सभा के लिये निर्वाचित होने की पात्रता नहीं रखता। हमारे देशवासी यह जानना चाहते हैं कि किस प्रकार के कर लगाये जा रहे हैं, उनकी क्या आवश्यकता है और उनसे संगृहीत धन को किस प्रकार व्यय करेगी। यदि सदस्यों को अपने तथा अपने निर्वाचकों के विचारों को व्यक्त करने का अवसर न दिया जायेगा तो उनके विधान मंडल के सदस्य होने का कोई अर्थ न होगा। यह समझ में आने वाली बात थी कि कार्यपालिका विधान मंडल को शक्ति नहीं देना चाहती थी। आज हम अपने प्रभु स्वयं हैं किन्तु डा. देशमुख ने यह करके धृष्टता की है ''कि वे यह सब कुछ नहीं चाहते हैं, वर्तमान प्रक्रिया बहुत अच्छी है, नामावली को बदलने की कोई आवश्यकता नहीं है और संसद अपना कर्त्तव्य निभायेगी।'' यह सुन कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मेरी तो यह धारणा थी कि सभा का प्रत्येक सदस्य एक ऐसे प्रस्ताव का स्वागत करेगा जिसके अनुसार वह अपने अधिकार यथोचित रूप से प्रयोग कर सकेगा। मैं स्वागत करता हूं और इसे फिर कहना चाहता हूं कि यदि आप इस विषय को संसद के निर्णय के लिये छोड़ देंगे तो सब मंत्री एक हो जायेंगे और आपको आय-व्ययक के विवरण पर विचार न करने देंगे। इसलिये जिस उपबंध का डा. अम्बेडकर ने सुझाव रखा है उसे संविधान में समाविष्ट करना बहुत आवश्यक है। संसद के पिछले दो सत्रों के अनुभव के आधार पर, मुझे विश्वास है कि सभा मसौदा समिति की इसलिये प्रशंसा करेगी कि उसने ठीक निर्णय किया है यद्यपि देर करके किया है। राज्य के वित्त की महालेखापरीक्षक देखरेख करेगा ही किन्तु सदस्यों को भी उसकी देखरेख करनी चाहिये। कर्मचारियों के वेतन आदि के लिये हम कुछ धनराशि प्रत्ययानुदान के रूप में 31 मार्च के पूर्व दे सकते हैं। उसके उपरान्त सभा को प्रत्येक विषय पर विचार करने के लिये तथा मांगों की राशि को कम करने या बढ़ाने के लिये पर्याप्त समय मिलेगा। तब कार्यपालिका के लिये सभा के सुझावों को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई चारा न रह जायेगा।

***डा. पी.एस. देशमुखः** क्या आपका उद्देश्य यही है?

***श्री आर.के. सिधवाः** मेरी दृष्टि में कई अन्य बातें भी हैं किन्तु उन सबका संविधान में समावेश नहीं हो सकता है। आपका इस उपबंध के आधारभूत सिद्धांत से ही विरोध है। आपका भाषण सुनकर मेरी यह धारणा हुई कि आप वर्तमान स्थिति को बनाये रखना चाहते हैं। मुझे इस पर बहुत आपत्ति है।

***डा. पी.एस. देशमुखः** मेरा यह विचार नहीं था।

***श्री आर.के. सिधवाः** यदि आप अपने विचारों को स्पष्टतया नहीं व्यक्त कर सकते हैं तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। यदि आपका यह विचार नहीं था तो मुझे यह सुन कर प्रसन्नता हुई है।

[श्री आर.के. सिधवा]

इस महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव का यह भाग पिछली बार स्थगित कर दिया गया था। सभा को डा. अम्बेडकर के उपस्थित किये हुये संशोधन को एकमत से स्वीकार कर लेना चाहिये। मैं इस संशोधन का स्वागत करता हूं।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर ने जिस संशोधन का प्रस्ताव उपस्थित किया है उससे पिछले कई वर्षों से हम आय-व्ययक सम्बन्धी जिस प्रक्रिया तथा प्रथा से परिचित हैं उसमें कुछ नवीनता उत्पन्न होती है। मैं यह कहूंगा कि संसद में आय-व्ययक को पारित कराने के लिये यह एक तंत्र है और इसलिये इसका सम्बन्ध प्रक्रिया से है न कि किसी सिद्धांत से।

इसके पूर्व कि मैं इस संशोधन द्वारा होने वाले परिवर्तनों के सम्बन्ध में बोलूं मैं इसमें सन्निहित संविधान के आधारभूत सिद्धांतों के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं, क्योंकि यदि उन्हें स्पष्ट न किया गया तो उनके सम्बन्ध में भ्रम हो सकता है।

मेरे विचार से यह बहुत ही उपयुक्त सिद्धांत है कि जब तक किसी विधि द्वारा कोई कर आरोपित न हो तब तक वह न लगाया जायेगा। संविधान में इसी प्रकार इस उपयुक्त उपबंध को भी संविधान में समाविष्ट करना चाहिये कि जब तक विधान मंडल से प्राधिकार प्राप्त न हो तब तक कोई कर आरोपित न किया जायेगा। यह हमारे संविधान का एक आधरभूत सिद्धांत है। यह एक समुचित सिद्धांत है और संविधान में इसका समावेश होना ही चाहिये।

इसके अतिरिक्त जब तक संसद अधिनियम द्वारा प्राधिकार प्रदान न करे तब तक कोई धन व्यय नहीं किया जा सकता और वह केवल विधान मंडल के संकल्प के आधार पर व्यय नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ यह है कि दो अधिनियम आवश्यक होंगे एक वित्त अधिनियम और दूसरा विनियोग अधिनियम और दोनों को पृथक् रूप से स्वीकार करना होगा। एक के द्वारा वार्षिक राजस्व को संग्रह करने के लिये प्राधिकार तथा मंजूरी प्राप्त होगी और दूसरे से विधान मंडल के अधिनियम के आधार पर धन-व्यय करने की मंजूरी प्राप्त होगी।

इस संशोधन में ये समुचित सिद्धांत सन्निहित है। प्रस्ताव के अन्य भाग अर्थात् लेखानुदान और प्रत्यानुदान प्रक्रिया-सम्बन्धी प्रक्रिया के विवरण सम्बन्धी अथवा संसद की समय सारिणी सम्बन्धी विषय हैं जिनके आधार पर आय-व्ययक संसद में निश्चित समय में पारित हो सकेगा। मेरे विचार से सुविधाजनक यही होगा कि इन विषयों का निर्णय संसद के लिये छोड़ देना चाहिये और इन्हें संविधान का अंग न बनाना चाहिये।

मुझे इस सभा में कभी संविधान में अत्यधिक विवरण प्रविष्ट करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है जिसका अनुसरण करना इस समय की परिवर्तनशील स्थिति में तथा इस परिवर्तनशील संसार में बहुत कठिन हो जायेगा।

इसके अतिरिक्त यदि इस व्यवस्था को स्वीकार किया जाये कि लेखानुदान तथा प्रत्ययानुदान को तथा प्राक्कलनों को जब कभी और जहां कहीं आवश्यक हो, प्रविष्ट किया

जा सकता है है तो इससे न संसद की प्रभुत्ता पर आघात होता है और न उसके देखरेख करने के तथा वित्त-सम्बन्धी प्रशासन के अधिकारों पर ही आघात होता है। इसे हम सभी स्वीकार करते हैं। परन्तु वास्तव में अनुभव यह रहा है कि सदस्य देखरेख करने की अपेक्षा चर्चा ही अधिक करते हैं। चर्चा करने के अतिरिक्त अन्य बातों के लिये कोई उपबन्ध नहीं है। वर्तमान समय-सारिणी के अधीन देश के वित्त की देखरेख तथा परीक्षा करने के लिये उपबन्ध रखना बहुत कुछ असम्भव ही है। संविधान को सम्पूर्ण प्रभुता सम्पन्न लोग अपनी प्रभुता को प्रवर्त्तन में लाते हुये निर्माण करते हैं और मेरे विचार से उसमें उन विभिन्न अनुदानों और प्रक्रियाओं का समावेश करना अनावश्यक है जिनके आधार पर विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में उपबंध रखे जा सकते हैं।

किन्तु संसद के अधिनियम द्वारा विधान मंडल का प्राधिकार बड़ी गम्भीरतापूर्वक प्रदान किया जाता है और वह इस विषय के सम्बन्ध में परमावश्यक है। किन्तु इस विषय के सम्बन्ध में संसद द्वारा निर्मित नियमों में भी उपबंध रखे जा सकते हैं ताकि आय-व्ययक की विभिन्न अवस्थाओं का और सभा के सम्मुख वित्त-अधिनियम तथा विनियोग-अधिनियम के रूप में उपस्थित आय-व्ययक के परिणामों का विनियमन हो सके और देश की आवश्यकताएं पूरी हो सकें तथा इस प्रकार की विधि के निर्माण के सम्बन्ध में संसद की प्रभुता बनी रह सके।

मेरे विचार से कुछ सदस्य इस संशोधन के स्वरूप को तथा इसके उद्देश्य को यथोचित रूप से नहीं समझ पाये हैं क्योंकि उन्होंने यह विचार व्यक्त किया है कि जिस उपबंध पर हम इस समय विचार कर रहे हैं उससे कार्यपालिका की शक्ति कम हो जायेगी और विधान मंडल की शक्ति बढ़ जायेगी। इस संशोधन में इस प्रकार का कोई सुझाव नहीं है। इस संशोधन द्वारा संसद को वित्त प्रशासन के सम्बन्ध में अधीक्षण, परीक्षण, विनियमन तथा विनिश्चयन की जो शक्ति प्राप्त हो जाती है उससे राष्ट्रीय वित्त का समुचित प्रशासन सुनिश्चित हो जायेगा। किन्तु मैं इसे फिर दुहराना चाहता हूं कि संविधान में इतना विस्तृत विवरण देने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि डा. अम्बेडकर ने कहा है कि ये बात इंग्लिस्तान की प्रणाली से ली जा रही है परन्तु वहां की व्यवस्था में और इस व्यवस्था में भेद हैं। वहां की प्रणाली की पूरी तौर से नकल भी नहीं की जा रही है क्योंकि प्रत्ययानुदान और प्राक्कलनों को स्थान नहीं दिया गया है। आपात की दशा में ही नहीं बल्कि साधारण वाणिज्यिक और आर्थिक संकट के उपस्थित होने पर भी उनकी बड़ी आवश्यकता पड़ सकती है। इसका उल्लेख नहीं किया गया है कि जब आय-व्ययक विधान मंडल में विभिन्न अवस्थाओं में होगा तो प्राक्कलनें उन अवसरों पर किस रूप में उपस्थित की जायेंगी क्योंकि उनके आधार पर सभा धन व्यय करने वाले विभागों की नीति पर विचार कर सकती है।

संशोधन में दो निधियों को अर्थात् संचित-निधि को और आकस्मिकता निधि को जिस रूप में स्थान दिया गया है उसके कारण उनकी व्याख्या करना आवश्यक है। संचित-निधि की स्थापना कुछ ऐसे व्ययों के कारण आवश्यक हो गई है जिन पर संसद प्रत्येक वर्ष अपनी इच्छानुसार मत नहीं दे सकती है जैसे कि असैनिक सूची का व्यय, न्यायाधीशों का वेतन, राष्ट्रीय ऋण पर ब्याज इत्यादि। यद्यपि संशोधन में यह कहा गया है कि संचित-निधि

[प्रो. के.टी. शाह]

केवल राजस्व का संग्रह मात्र है और यह समुचित भी कहा जा सकता है किन्तु साथ ही संचित-निधि के उद्‌भव तथा स्वरूप को भी दृष्टि से ओझल न होने देना चाहिये।

आकस्मिकता निधि के सम्बन्ध में अपनी अनभिज्ञता प्रकट करता हूं। मुझे स्मरण नहीं है कि इंग्लिस्तान की प्रणाली के अधीन इसके अनुरूप कोई निधि है या नहीं। यदि है भी तो कई स्थितियों में, जो हम सभी को विदित है, उसका दुरुपयोग हो सकता है। इसलिये मेरी समझ में नहीं आता कि इस प्रकार की निधि के लिये हम संविधान में उपबंध क्यों रखे जा रहे हैं। किसी विशेष आवश्यकता के पड़ने पर अथवा आपात के उपस्थित होने पर संसद यदि आवश्यक समझे तो इस प्रकार की निधि स्थापित कर सकती है। मेरे विचार से इन विषयों के सम्बन्ध में संसद को पूर्ण सत्ता प्राप्त है और यह यथोचित व्यवस्था कर सकती है। यह आवश्यक नहीं है कि इस देश की आधारभूत विधि में कोई ऐसा सांविधानिक प्राधिकार उपबन्धित किया जाये जिसके अधीन संसद यह व्यवस्था कर सके क्योंकि संसद को वित्त सम्बन्धी उच्चतम प्राधिकार प्राप्त होगा ही। प्रक्रिया तथा समय-सारिणी के सम्बन्ध में सभी विषयों का विनियमन संसद को करना चाहिये चाहे वह आकस्मिकता निधि को स्थापित करने का विषय हो अथवा तात्कालिक आपात के सम्बन्ध में उपबंध रखने का विषय हो। मेरे विचार से यह कोई समझदारी की बात न होगी कि भविष्य की संसद को ऊपर से सुविधाजनक प्रतीत होने वाले उपबंधों से बांध दिया जाये। मेरे विचार से इनका दुरुपयोग होगा और इसलिये मेरी यह इच्छा होती है कि मैं इनका विरोध करूं।

सभी बातों का विचार करने के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि इन परिवर्तनों से यद्यपि प्रक्रिया में सुधार होता है किन्तु संविधान में अत्यधिक विवरण प्रविष्ट हो जाता है जिनके कारण आधारभूत तथा समुचित सिद्धांतों से ध्यान हट जायेगा और भले ही हम इस चेतावनी की ओर ध्यान न दें परन्तु भविष्य में कई अवसरों पर इनका दुरुपयोग किया ही जायेगा।

***श्री जगतनारायण लाल** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, डा. अम्बेडकर ने इस संशोधन के पक्ष में जो तर्क उपस्थित किये हैं, तथा श्री सिधवा ने जो जोरदार भाषण दिया है, उसे समझने का मैंने प्रयास किया है। मेरे विचार से डा. अम्बेडकर ने हमें बताया कि इंग्लिस्तान में संचित-निधि किस प्रकार स्थापित की गई और उसका क्या इतिहास रहा है। मैं कह नहीं सकता कि हमारे देश में कई वर्षों से व्यय की तथा आय-व्ययक के व्यय की जिस प्रणाली का अनुसरण किया जा रहा है उससे उस इतिहास की संगति है या नहीं। मेरे विचार से यहां कभी भी वैसी कठिनाई अथवा असुविधा का अनुभव नहीं किया गया जैसी कठिनाई का अनुभव इंग्लिस्तान में संचित-निधि स्थापित करते समय किया गया था। उन्होंने बताया कि इस निधि का उद्‌भव वहां किस प्रकार हुआ, अर्थात् उन्होंने यह बताया कि उसे स्थापित करने का कारण यह था कि सम्राट धन का दुरुपयोग करता था। मुझे इस परिवर्तन के समर्थन में श्री सिधवा के जोरदार तर्क को सुनकर आश्चर्य हुआ विशेषतया जब उन्होंने यह कहा कि इससे आय-व्ययक पर लोग देख-रेख कर सकेंगे। यदि वे वास्तव में यह समझते होते कि संचित-निधि और आकस्मिकता-निधि क्या है तो मेरे

विचार से वे इसके विरोध में तर्क उपस्थित करते। मैं कामन्स सभा के ''मैनुअल आफ प्रोसीड्यूअर फार पब्लिक बिजिनेस'' नाम के एक प्रकाशन के पृष्ठ 164 में इस विषय के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है उसे सभा को पढ़ कर सुनाऊंगा:

> ''संचित-निधि का उद्देश्य यह है कि सरकार की संचित-निधि से, उन विभागों की सेवा के लिये जिनके व्यय के लिये धन अनुदान के रूप में दे दिया गया हो, ऐसी धनराशियां निकालने की शक्ति प्राप्त हो जाये जिनकी विनियोग-अधिनियम द्वारा अन्तिम मंजूरी मिलने के पहले आवश्यकता पड़े।''

यह वर्णन उनकी कल्पना के विपरीत है। संशोधन का उद्देश्य यही है कि अनुच्छेद 90 के खंड (1) में ''भारत राजस्व'' शब्दों के स्थान में ''संचित-निधि अथवा आकस्मिकता-निधि'' शब्द प्रविष्ट किये जायें। भारत राजस्व के स्थान पर, जिससे धन निकाल कर मंजूर किये हुये आय-व्ययक के अनुसार ही धन व्यय किया जा सकता था संचित-निधि अथवा आकस्मिकता-निधि स्थापित की जा रही है और उद्देश्य यह है कि सरकार बिना किसी कठिनाई के इससे धन निकाल कर व्यय करती रहे। मुझे आश्चर्य है कि इसकी आवश्यकता आ पड़ी है। मैं डा. अम्बेडकर से पूछता हूं कि ऐसा क्यों किया जा रहा है। पहले तो, जैसा कि डा. देशमुख कह चुके हैं 'संचित-निधि'' शब्दों से लोगों को भ्रम होगा विशेषतया जब कि उनका यह भी निर्वचन हो सकता है कि बिना विनियोग-अधिनियम के पारित हुये भी धन व्यय करने का अधिकार होगा। इस पदावली का गलत निर्वचन ही न होगा बल्कि इसकी कड़ी आलोचना भी की जायेगी। इसलिये मैं चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर इस पर विचार करें कि क्या इस पदावली को समाविष्ट करना आवश्यक है और क्या इस अनुच्छेद को तद्रूप स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस संशोधन के सम्बन्ध में मैं और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता हूं और मुझे आशा है कि मैने जो कुछ कहा है उस पर विचार किया जायेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, अपने उन दो मित्रों के भाषणों को सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ है जिन्होंने डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर कुछ सन्देह प्रकट किया है। जिन संशोधनों की सूचना दी गई है उनको मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा और इंग्लिस्तान की संसद में जो प्रक्रिया व्यवहार में है उसका भी अध्ययन किया। श्रीमान्, मैं संयुक्त प्रान्त की विधान सभा का लगभग दस वर्ष तक सदस्य रहा हूं और इस सभा का पिछले तीन वर्ष से सदस्य हूं और मेरे सामने कई आय-व्ययक पारित हुये हैं किन्तु मुझे स्मरण नहीं है कि प्रान्त में अथवा केन्द्र में आय-व्ययक के प्रस्तावों में किसी भी अनुदान के अधीन किसी भी विषय में कभी भी कोई परिवर्तन हुआ था। होता यह है कि वित्त मंत्रणालय एक छपी हुई पुस्तक उपस्थित करता है जिसमें सभी प्राक्कलनों का विवरण होता है। जब आय-व्ययक को प्रान्तीय विधान सभा में अथवा केन्द्रीय विधानसभा में उपस्थित किया जाता है तो प्राक्कलनों की छपी हुई प्रतियां सदस्यों में वितरित की जाती हैं और उन्हें अपनी आपत्तियों को प्रकट करने का तथा प्रत्येक विषय के सम्बन्ध में कुछ कहने का अवसर दिया जाता है और तब उन्हें एक निश्चित तिथि तक आय-व्ययक को पारित कर देना होता है। मैं सभा से पूछता हूं कि क्या हमें, जिन्हें देश ने यहां अपने धन की देखरेख करने के लिये भेजा है, केवल वित्त-मन्त्रणालय द्वारा उपस्थित प्राक्कलनों की पुस्तिका का अनुमोदन करके संतुष्ट हो जाना चाहिये? श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि यद्यपि इसके लिये देर

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

हो गई थी परन्तु इस समय भी प्रक्रिया के सम्बन्ध में इन संशोधनों को उपस्थित करके, जिनके फलस्वरूप वह इंग्लिस्तान की प्रक्रिया के अनुरूप हो जायेगी डा. अम्बेडकर ने बहुत बड़ी सेवा की है। सम्भवत: अभी तक यहां जिस प्रक्रिया का अनुसरण होता रहा है उसके हम इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि हमें अब वही प्रिय लगती है। हम अभी इतने वर्षों के दासत्व से छुटकारा नहीं पा सक रहे हैं और यह विचार करते हैं कि जो कुछ होता आया है वही होता रहे। यदि हमने इसका पुनर्विलोकन किया होता कि इंग्लिस्तान की संसद में किस प्रकार प्राक्कलनों के प्रत्येक शीर्षक की परीक्षा की जाती है तो हम अनुभव करते कि डा. अम्बेडकर के संशोधनों का क्या महत्त्व है। सभा को चाहिये कि वह इन संशोधनों का हृदय से अनुमोदन करे। श्रीमान्, इंग्लिस्तान की संसद में वर्ष के आरम्भ में सम्राट के भाषण के पश्चात् कामन्स सभा अपने को सम्भरण समिति के रूप में परिणत करने के लिये तथा उसके सम्मुख उपस्थित प्राक्कलनों पर विचार करने के लिये एक तिथि निश्चित करती है। प्राक्कलनें चार भागों में उपस्थित की जाती हैं अर्थात् नौ-सेना के लिये प्राक्कलनें, थल-सेना के लिये प्राक्कलनें, वायु-सेना के लिये प्राक्कलनें तथा असैनिक विषयों के लिये प्राक्कलनें, ताकि सभा उन पर अलग अलग विचार कर सके। वहां इस प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। सभा सम्भरण-समिति में परिणत हो जाती है और यह प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है कि ''अध्यक्ष महोदय पीठासीन न रहे''। इस प्रस्ताव पर प्रत्येक प्राक्कलन के सम्बन्ध में एक-दो दिन तक वाद-विवाद होता है और फिर सभा सभी प्राक्कलनों पर सामान्य रूप से विचार-विमर्श करती है। इस प्रस्ताव के स्वीकार हो जाने पर सारी सभा सम्भरण-समिति का रूप धारण कर लेती है।

***डा. पी.एस. देशमुख:** क्या मेरे माननीय मित्र ने प्रस्तावित संशोधनों पर इस प्रकार के संशोधनों को देखा है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं आपसे कहता हूं कि संविधान में केवल उन्हीं संशोधनों को उपबन्धित करने की आवश्यकता है जिनके फलस्वरूप संसद इंग्लिस्तान की संसदीय प्रक्रिया को स्वीकार कर सके। यह आवश्यक नहीं है कि इंग्लिस्तान में जो कुछ किया जाता है उसका प्रत्येक ब्यौरा संविधान में रखा जाये। ये प्रक्रिया-सम्बन्धी विषय संसद के नियमों में उपबन्धित किये जा सकते हैं। किन्तु प्रक्रिया के वे अंश जिन्हें संविधान के अधिनियम में प्रविष्ट करना आवश्यक है इन संशोधनों में उपबन्धित हैं। इसलिये, श्रीमान्, यदि हम इंग्लिस्तान में प्रयुक्त प्रणाली को स्वीकार करना चाहते हैं तो यह संशोधन आवश्यक है।

इसके पश्चात् सम्भरण-समिति में विचार-विमर्श के लिये 20 दिन की अवधि निश्चित की जाती है। इस बीच प्राक्कलनों पर विचार-विमर्श होता है और उनकी सावधानी से परीक्षा की जाती है। समिति में प्रत्येक सदस्य जितनी बार चाहे बोल सकता है। हमारे यहां इस समय आय-व्ययक के उपस्थित होने पर कोई भी सदस्य एक बार से अधिक नहीं बोल सकता है। किन्तु यदि वास्तव में हम प्राक्कलनों में परिवर्तन करना चाहते हैं तो हमें कई बार बोलने का अवसर मिलना चाहिये। इस प्रकार जब सभा सम्भरण समिति का रूप धारण कर लेती है तो सारे विषय के प्रत्येक अंग पर विचार किया जाता है। यह

स्मरण रखना चाहिये कि इस बीस दिनों में कामन्स सभा की बैठक प्रत्येक दिन नौ-दस घंटे तक समवेत रहती है। इस समय में प्रत्येक प्राक्कलन की सावधानी से छानबीन तथा परीक्षा की जाती है और बीसवें दिन सब कुछ स्वीकार कर लिया जाता है और अध्यक्ष के समक्ष तत्सम्बंधी एक प्रतिवेदन उपस्थित किया जाता है। प्रतिवेदन पर विचार करने के लिये सभा फिर समवेत होती है और फिर वादानुवाद होता है। इस प्रकार प्रत्येक प्राक्कलन पर आरम्भ में एक-दो दिन तक वादानुवाद होता है और फिर समिति सभी प्राक्कलनों पर विस्तृत रूप से विचार करती है। प्रतिवेदन पर विचार करते समय फिर वाद-विवाद हो सकता हैं। इस प्रकार सारे आय-व्ययक पर विस्तृत रूप से विचार किया जाता है और प्राक्कलनों में आवश्यक परिवर्तन किये जाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि संसद के सदस्य उन सभी बातों को स्वीकार कर लें जिन्हें सरकार उनके सामने रखे। वे उनमें देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर परिवर्तन करते हैं। सम्भरण समिति के अतिरिक्त एक साधन-समिति भी होती है। सम्भरण-समिति व्यय स्वीकार करती है और साधन-समिति आय-कर-सम्बन्धी विधियों आदि को बदल कर उस व्यय के लिये धन प्राप्त करने का उपाय करती है। इसके लिये भी दस दिन की निश्चित अवधि रहती है और इस बीच नये करों की प्रस्थापनाओं की सावधानी से परीक्षा की जाती है और सम्भरण समिति के प्रतिवेदन उपस्थित करने के पश्चात् साधन-समिति समवेत होती है और उन प्राक्कलनों को स्वीकार करती है। इस प्रकार, श्रीमान्, पारित होने के पूर्व सभी बातों की यथोचित छानबीन होती हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं, चार प्रकार की प्राक्कलनें होती हैं और सभा में खुली तौर पर बारह बार वाद-विवाद होता है। इसके अतिरिक्त सम्भरण-समिति तथा साधन-समिति में विस्तृत रूप से छानबीन होती है। इस प्रकार यह समझ में आ गया होगा कि संसद बिना सावधानी से विचार किये हुये अथवा बिना संसद के सदस्यों के मतदान के एक कौड़ी भी व्यय नहीं करती है। यह सभी को विदित है कि इस समय भारत में पूरा सामान्य वादानुवाद और कर्त्तन-प्रस्तावों पर वादानुवाद सात दिन में समाप्त हो जाता है और फिर पूरा आय-व्ययक अन्तिम रूप से पारित हो जाता है और हमें प्राक्कलनों पर फिर से विचार करने का कभी अवसर ही नहीं मिलता। अन्त में मुखबन्ध का प्रयोग किया जाता है और सब कुछ पारित हो जाता है। वास्तव में इसका अर्थ यह है कि सभा को अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करने का अवसर ही नहीं मिलता और वित्त-मन्त्रणालय जो कुछ कहता है उसे स्वीकार कर लिया जाता हैं। इसलिये मैं इन संशोधनों के लिये डा. अम्बेडकर का अत्यन्त कृतज्ञ हूं और मेरे विचार से आने वाली पीढ़ियां भी उनकी कृतज्ञ होंगी क्योंकि उनके द्वारा संविधान में यह उपबन्धित हो जायेगा कि कोषाधिकारी संसद की शक्ति के अधीन रहेगा। अब संसद प्राक्कलनों की छानबीन कर सकेगी और अपने मतों द्वारा उनमें परिवर्तन भी कर सकेगी। श्रीमान्, इस विस्तृत प्रक्रिया में समय लगता है और इसलिये लेखानुदान की व्यवस्था होनी चाहिये ताकि जब तक संसद व्यय की छानबीन न कर ले तब तक सरकार अपना कार्य कर सके। लेखानुदान इसी उद्देश्य से पारित किये जाते हैं। मेरे विचार से लेखानुदान की व्यवस्था कठोर न होनी चाहिये। इस दोष को दूर करने के लिये डा. अम्बेडकर के संशोधन में उपबंध है। यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है और इसे संविधान में स्थान मिलना चाहिये। मैं प्रोफेसर शाह के इस विचार से सहमत नहीं हूं कि इसका सम्बन्ध केवल विवरण से है। इसलिये मैं संशोधन के इस अंश का पूर्णतया समर्थन करता हूं।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

इसके अतिरिक्त, श्रीमान, जब कामन्स सभा समवेत होती है तो पहले वर्ष के अनुपूरक अनुदान उपस्थित किये जाते हैं और उन पर लेखानुदानों के साथ विचार-विमर्श होता है। 31 मार्च तक कामन्स सभा संचित-निधि-अधिनियम पारित कर देती है जिसके फलस्वरूप विनियोग-अधिनियम के पारित होने तक सरकार को शासन-कार्य चलाने के लिये प्राधिकार प्राप्त हो जाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि इस समय संसद में लगभग डेढ़ सौ सदस्य ही हैं। यह संख्या उन सदस्यों की है जो सभा में उपस्थित होते हैं। नवीन लोक सभा में पांच सौ सदस्य होंगे और यदि संसद में आय-व्ययक पर वादानुवाद करने के लिये केवल सात या आठ दिन दिये गये तो उसके सम्बन्ध में किसी व्यक्ति को भी अपने विचार प्रकट करने का अवसर नहीं मिलेगा। इसलिये मेरे विचार से प्रस्तावित उपबंधों को स्वीकार करने से हमारी प्रक्रिया इंग्लिस्तान की संसद की प्रक्रिया के अनुरूप हो जायेगी और इस प्रकार सदस्य अपनी सहमति प्रदान करने के पूर्व आय-व्ययक की विस्तृत रूप से परीक्षा कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, जैसा कि मैं कह चुका हूं, एक होता है संचित-निधि अधिनियम और एक होता है विनियोग-अधिनियम। वास्तव में विनियोग-अधिनियम के दस्तावेज में वे राशियां भी सम्मिलित की जाती हैं जो संचित-निधि से निकाल कर व्यय की जाती हैं। इस प्रकार विनियोग-अधिनियम वास्तव में संसद द्वारा प्रदत्त प्राधिकार है जिसके आधार पर सरकार धन व्यय कर सकती है।

डा. अम्बेडकर ने जो योजना सभा के सम्मुख उपस्थित की है उसका स्वरूप, जहां तक उसे मैं समझ पाया हूं, इसी प्रकार है। उन्होंने इस सम्बन्ध में जो श्रम किया है और जिस अद्‌भुत प्रकार से इस योजना को हमारे संविधान में समाविष्ट किया है उसके लिये मुझे आशा है कि सभा उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करेगी। यद्यपि अभी तक अपने यहां लोकतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने के प्रयास में हम इंग्लिस्तान की प्रणाली की नकल कर रहे थे किन्तु अभी तक हमने उसकी एक आधारभूत पद्धति की ओर ध्यान नहीं दिया था। इंग्लिस्तान के लोकतंत्र का एक आधारभूत सिद्धांत यह भी है कि लोक-प्रतिनिधि वित्त पर पूर्ण नियंत्रण रखते हैं। डा. अम्बेडकर की योजना के आधार पर अब हम अपनी संसद की प्रक्रिया को इंग्लिस्तान की प्रणाली के अनुरूप बना सकेंगे।

इस सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि इंग्लिस्तान में वित्तीय वर्ष अप्रैल से आरम्भ होता है। मैं यह कहना चाहता हूं कि मई और जून के महीनों में बहुत गरमी पड़ती है। हम भी वित्तीय वर्ष को 1 नवम्बर से आरम्भ न करके 31 अक्तूबर से आरम्भ कर सकते हैं ताकि मार्च के आरम्भ तक अथवा अप्रैल तक हम विनियोग-अधिनियम को पारित कर सकते हैं और सभी विषयों पर विस्तृत रूप से विचार-विमर्श कर सकते हैं। इसलिये यथोचित अवसर पर मैं एक संशोधन द्वारा इस सुझाव को सभा के सामने रखूंगा। मेरे विचार से हमारे देश में बहुत प्राचीनकाल से वित्तीय वर्ष को दीपावली से आरम्भ करने की प्रथा चली आई है जो लगभग पहली नवम्बर को होती है।

मैं डा. अम्बेडकर के प्रस्तावों का हृदय से समर्थन करता हूं और मुझे आशा है कि उनके लिये सभा उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करेगी।

***श्री बी. दास:** अध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर पर जिन बधाइयों की वर्षा की जा रही है उनमें मैं भी अपना योग देना चाहता हूं। श्रीमान्, यह सभा तथा हम सभी लोग डा. अम्बेडकर के, मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के तथा मसौदा-समिति के अन्य सदस्यों के आभारी हैं जिन्होंने एक ऐसा मसौदा तैयार करके हमारे सामने रखा है जो संसद की पिछले दो वर्षों की गतिविधि के अनुरूप है। आय-व्ययक जिस ढंग से उपस्थित किये जाते थे तथा पारित किये जाते थे उससे हम बहुत असंतुष्ट थे। हमें इससे भी बहुत असंतोष था कि पिछली विधान सभा में विदेशी शासकों ने जिन आय-व्ययकों को उपस्थित किया था उन्हीं की बहुत कुछ नकल की जाती थी। डा. अम्बेडकर ने हमें बताया कि 1948-49 के अन्तिम दिन अनुपूरक प्राक्कलनों के रूप में 118 करोड़ रुपये की धनराशि पारित की गई थी। इस सूचना के लिये मैं उनका आभारी हूं।

भारत के प्रति विश्वास बनाये रखने तथा भारत के राष्ट्रीय वित्त की स्थिति सुदृढ़ बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि कुछ धन भारत की संचित निधि पर ''भारित'' धन के रूप में रहे। अनुच्छेद 92 में इस प्रकार के कई विषयों का वर्णन है और यदि संसद अपने मत द्वारा उनकी धनराशि कम करना चाहेगी तो उससे कुछ लाभ न होगा। संसद को इस भारित विषयों की धनराशि को, जिसे राष्ट्रपति अथवा वित्त मंत्री उसके सम्मुख रखेगा, कम न करना चाहिये। इन भारित विषयों में से कुछ विषय हमें विदेशी शासकों की देन के रूप में प्राप्त हुये। उन्होंने हमें एक बहुत बड़ा ऋण सौंपा और उसके ब्याज को हम इन समय चुका रहे हैं। यदि संसद धन नष्ट करने के लिये तथा देश पर एक बहुत बड़े लोक ऋण का भार डालने के लिये पिछले शासकों की निन्दा करती है तो ठीक ही करती है। किन्तु चूंकि अब ये ऋण राष्ट्रीय ऋण है इसलिये इनके ब्याज को चुकाना ही होगा। इसी प्रकार राष्ट्रपति के कर्मचारियों पर, उच्चतम न्यायालय पर, उच्च न्यायालयों पर, महालेखापरीक्षक पर तथा अन्य एक दो विषयों पर व्यय होने वाला धन संचित निधि पर भारित होना चाहिये। यदि भारित शीर्षकों के अधीन दिखाये हुये विषयों पर अत्यधिक व्यय हुआ तो भविष्य को संसद उसकी आलोचना करेगी और उसकी आलोचना युक्तियुक्त होगी किन्तु यदि हम इस समय उस व्यय को कम करे अथवा उसे ऐसा व्यय समझे जिस पर मत दिया जा सकता है तो यह अनुचित होगा। इसलिये हमारे राष्ट्रीय वित्त की वर्तमान स्थिति को देखते हुये मेरे विचार से इस प्रकार की वित्तीय नियंत्रण की प्रणाली आवश्यक है।

यह मेरी समझ में नहीं आया कि 'संचित-निधि' और 'आकस्मिकता-निधि' शब्दों पर मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शाह और श्री जगतनारायण लाल ने क्यों आपत्ति की। पहले हम बहुत मूलधन-व्यय के लिये वचनबद्ध थे। धन पर मत लिया जाता है किन्तु वह उसी वर्ष व्यय नहीं किया जाता। यदि भारत की आकस्मिकता निधि को स्थापित किया गया तो मूलधन व्यय सम्बन्धी विषयों के लिये, चाहे ये विषय बहुलक्षी आयोजन हों अथवा

[श्री बी. दास]

बड़े-बड़े उद्योग मतदान द्वारा प्रदत्त धन संचित रखा जा सकता है और अगले वर्ष अथवा आने वाले वर्षों में व्यय किया जा सकता है। मेरे विचार से आकस्मिकता-निधि का उद्देश्य यही है। संसद के विचाराधीन वर्ष के लिये स्थापित संचित निधि से आकस्मिकता-निधि भिन्न है और उससे धन निकाल कर आगे चल कर व्यय किया जा सकता है।

श्रीमान्, हमें अपनी परम्परा का विकास स्वयं करना है। पहले मैंने इंग्लिस्तान की संसद अथवा कनाडा की संसद अथवा डोमिनियन की संसद पर इस सभा मे भले ही आपत्ति की हो किन्तु आज मुझे भारत में वित्तीय नियंत्रण की इंग्लिस्तान की प्रणाली का अनुसरण करने में कोई संकोच नहीं है। विदेशी शासकों के अधीन हमने उसका अनुसरण किया और हमें उसका अनुसरण करने के लिये बाध्य किया गया। आज हम उसे अपनी नवीन प्रतिष्ठा के अनुरूप बनाने तथा साथ ही अपने वित्त पर पूर्ण नियंत्रण रखने का प्रयास कर रहे हैं। डा. अम्बेडकर इसकी चर्चा कर चुके हैं कि संसद को आय-व्ययक पर विचार-विमर्श करने के लिये निश्चित कालावधि को बढ़ाने की शक्ति दी जा रही है। इस विषय पर श्री सिधवा ने भी अपने विचार व्यक्त किये। किन्तु इस सबका सम्बन्ध संसद के वादानुवाद अथवा साधारण विषयों पर विचार-विमर्श से नहीं है और हमें यह न भूलना चाहिये कि हम वित्त मंत्री द्वारा उपस्थित प्राक्कलनों पर विचार करेंगे। यह संसद का एक मुख्य कर्त्तव्य है। अच्छा तो यह होगा कि जब आय-व्ययक संसद के सम्मुख उपस्थित किया जाये तो सभा प्राक्कलन-समिति में परिणत हो जाये। मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना यही मत प्रकट कर चुके हैं। प्राक्कलन समिति में बिना वित्त-सम्बन्धी अथवा व्यय-सम्बन्धी सिद्धांतों पर विचार-विमर्श किये हुये हम प्रत्येक मंत्रणालय के व्यय-सम्बन्धी विषयों पर ही विचार कर सकते हैं ताकि आय-व्ययक में जो अत्यधिक व्यय दिखाया गया हो अथवा पहले अव्यावहारिक योजनाओं पर जो व्यय किया गया हो उस पर नियंत्रण रखा जा सके। मुझे आशा है कि भविष्य में किसी मन्त्रणालय की अव्यावहारिक योजनाओं पर धन व्यय न करने दिया जायेगा। उस प्राक्कलन समिति में, जो वास्तव में सभा ही अन्य रूप में होगी, (मुझे इंग्लिस्तान की प्रणाली का उल्लेख करने के लिये क्षमा किया जाये) अध्यक्ष को हट जाना होगा और मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव के समान किसी व्यक्ति को सभापति-आसन ग्रहण करना होगा। उस समिति में हम व्यय के प्रत्येक विषय पर, विचार-विमर्श कर सकते हैं, जिससे विभिन्न विभाग धन निकाल कर अथवा दुबारा धन निकाल कर व्यय न कर सकेंगे। अभी तक वे इसी प्रकार व्यय करते आये हैं। यदि अगले वर्ष भारतीय गणराज्य के घोषित होने के पश्चात् ही वह समिति अस्तित्व में आ जाये तो बहुत धन की बचत हो सकती है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। आज मैं इसे फिर दुहराना चाहता हूं कि यदि 1949-50 के साधारण व्यय के लिये सरकार को 26 से लेकर 28 करोड़ तक का ऋण लेना पड़ रहा है तो उसका दिवाला ही निकल गया है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक वर्ष ब्याज की धनराशि 1 करोड़ रुपया बढ़ती जा रही है और इस अनुच्छेद के अधीन ब्याज का धन भारत की संचित-निधि पर भारित व्यय है। सभा को अपने वर्तमान वित्त मंत्री को अथवा अगले वर्ष से कार्य करने वाले वित्त मंत्री को साधारण व्यय के लिये ऋण लेने की आज्ञा सावधानी से देनी चाहिये। हमें ज्ञात है कि भारत सरकार के आय-व्ययक में पिछले दो वर्षों से यदि हम मूल धन व्यय

को भी सम्मिलित करें, तो 150 से लेकर 200 करोड़ तक का घाटा दिखाया गया है। यदि मूल-धन व्यय की सुव्यवस्था की जाये तो इस मद का घाटा स्वतः पूरा हो सकता है। किन्तु इस समय सरकार बहुत बड़े कर्मचारी-वर्ग को रखे हुये है और विभिन्न मंत्रणालयों में अत्यधिक धन व्यय किया जाता है। वास्तव में ये मंत्रणालय एक सुगठित सरकार के रूप में कार्य नहीं करते। प्रत्येक मंत्रालय स्वायत्तशासी मंत्रणालय के रूप में कार्य करता है और वित्त-मंत्रणालय अथवा महालेखा-परीक्षक की बात नहीं मानता। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि संविधान में महालेखा-परीक्षक की स्थिति को सुदृढ़ बनाया गया है। यह भारत सरकार के मंत्रिमंडल के देखने की बात है कि वित्त मंत्रालय का भी विभिन्न मंत्रणालयों पर यथेष्ट नियंत्रण हो। इस समय नियंत्रण ठीक प्रकार नहीं रखा जाता और इसलिये प्रत्येक वर्ष भारत का ऋण 20 अथवा 30 करोड़ बढ़ जाता है और उससे कोई लाभ नहीं हो पाता। 1938-39 में यह ऋण 288 करोड़ रुपये था और आज बढ़ कर 900 करोड़ रुपये हो गया है। यह हमारे लिये बड़ी लज्जा की बात है कि हम ऋण लें और उससे अपना निर्वाह करें और स्वतंत्र भारत के शासन की शान देश भर में अथवा संसार भर में बघारते रहें। श्रीमान्, चूंकि राष्ट्रीय वित्त पर और भारत सरकार के व्यय पर यथोचित वित्तीय नियंत्रण रखने में मेरी हमेशा से दिलचस्पी रही है इसलिये मुझे इसकी प्रसन्नता है कि इन संशोधित अनुच्छेदों से पर्याप्त सुरक्षा हो सकेगी और मंत्री चोरी छिपे व्यर्थ में धन व्यय न कर सकेंगे। मैं इसके लिये डा. अम्बेडकर को फिर बधाई देता हूं।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, बोलने के पूर्व मैं डा. अम्बेडकर से कुछ बातों के स्पष्टीकरण के लिये आग्रह करना चाहता हूं। क्या इस संशोधन के फलस्वरूप भारत सरकार इसके लिये बाध्य हो जाती है कि वह एक निधि स्थापित करे जो संचित-निधि के नाम से कही जाये? अथवा क्या यह संशोधन केवल क्षमता प्रदायक संशोधन है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** यह निधि स्थापित ही है। केवल उसका नाम बदल दिया गया है।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय:** तब विधान मंडल में विनियोग अधिनियम को पारित करने की आवश्यकता होगी और उसे उसी सत्र में पारित करना होगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** जी हां।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय:** इसमें निःसंदेह समय लगेगा। श्रीमान्, इसे ध्यान में रखते हुये मैं कुछ बातें कहना चाहता हूं। भारत सरकार के मंत्रणालयों द्वारा अथवा प्रान्तीय सरकारों द्वारा जो धन व्यर्थ में व्यय होता है अथवा नष्ट होता है उसकी बहुत आलोचना की गई है। मेरे विचार से अनुच्छेद 90 के सिद्धांतों का अनुसरण प्रान्तीय सरकारों को भी करना होगा क्योंकि यही सिद्धांत अनुच्छेद 174 में भी सन्निहित है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** जी हां।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय:** इस सभा में यह आपत्ति की गई है कि विधान मंडलों में कर्त्तन-प्रस्तावों पर अथवा अनुदानों की मांगों पर विचार-विमर्श करने के लिये कुछ भी समय नहीं दिया जाता। यह आपत्ति तर्कयुक्त कही जा सकती है परन्तु विधान मंडलों में अधिक समय देने से यह दूर हो सकती है। विधान मंडलों में कर्त्तन-प्रस्तावों पर विचार-विमर्श करने के लिये अधिक समय क्यों नहीं दिया जाता? कर्त्तन-प्रस्तावों और मांगों पर अधिक समय तक विचार-विमर्श करने के लिये विधान मंडलों के नियमों को बदला जा सकता है। अनुदानों की मांगों पर विचार-विमर्श करने के लिये अधिक समय देने के उद्देश्य से उस प्रथा का क्यों परित्याग किया जाये जिसका अनुसरण हम पिछले कई वर्षों से करते आये हैं? विनियोग अधिनियम को पारित करने में कुछ समय लगेगा, जिसके फलस्वरूप प्रान्तीय विधान मंडल असुविधा का अनुभव करेंगे। कुछ प्रान्तों के लिये इस अधिनियम को एक ही सत्र में पारित करना कठिन हो जायेगा। किन्तु लेखानुदानों द्वारा यह उपबन्धित किया गया है कि विधान मंडल कुछ समय तक व्यय करने के लिये एक मुष्ट धन दे सकता है। किन्तु इससे भी कुछ प्रान्त असुविधा का अनुभव करेंगे। असम में हमें कभी आय-व्ययक सत्र के समय को कम भी करना पड़ा है कई सदस्य अपने काम से वापस जाना चाहते थे। पिछले आय-व्ययक-सत्र में विधान मंडल के सदस्यों के समझौते से हमें कुछ दिन कम करने पड़े।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): यदि उनकी टिकने की इच्छा न हो तो उन्हें सभा का सदस्य न बने रहना चाहिये।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय:** विधान मंडलों के कार्य के लिये जो समय रखा गया है उसे हमें असम में कम करना पड़ा। विभिन्न प्रान्तों की विभिन्न स्थिति है। इसलिये यह अनावश्यक प्रतीत होता है कि कर्त्तन प्रस्तावों तथा अनुदानों की मांगों पर विचार-विमर्श करने के लिये विधान मंडलों को अधिक समय देने के उद्देश्य से एक भिन्न प्रणाली का अनुसरण किया जाये। केवल इस कारण परिवर्तन न किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त मंत्रिमंडलों के व्यर्थ धन नष्ट करने की भी कुछ आलोचना की गई है। मेरे विचार से यह आलोचना निराधार है। कम से कम हमारे प्रान्त के मंत्रिमंडल की इस कारण आलोचना नहीं की जा सकती और मेरे विचार से अन्य प्रान्तों के मंत्रिमंडलों की भी इस कारण आलोचना नहीं की जा सकती। विधान मंडल में यह मांग की जाती है कि प्रान्त के लोगों के हित साधन के लिये अधिक धन व्यय किया जाये और वास्तव में धन के अभाव के कारण हम प्रांतों में विधान मंडल की मांगों को पूरा नहीं कर सकते। मेरे विचार से यह कहना तर्कसंगत नहीं है कि मंत्रिमंडल धन नष्ट कर रहे हैं, इस आधार पर हमारे किसी कार्य के सम्बन्ध में धारणा बनाना बिल्कुल गलत है। अभी तक हम जिस प्रणाली का अनुसरण करते आये हैं उसके अधीन प्रान्त के राज्यपाल अथवा राष्ट्रपति को प्रमाण-पत्र देने की आवश्यकता है और मेरे विचार से इस प्रथा से देश के राजस्व के प्रशासन पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ेगा। परन्तु यदि किसी प्रान्त को इस विनियोग-विधेयक को स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं किया जा रहा है और यह केवल क्षमता-प्रदायक अधिनियम है और प्रान्तों को इसकी स्वतंत्रता है कि वे इस अधिनियम को पारित करें अथवा प्रचलित प्रथा का ही अनुसरण करें तो कोई आपत्ति नहीं हो सकती। मैं डा. अम्बेडकर से पूछना चाहता हूं कि

क्या स्थिति यही है अथवा प्रत्येक प्रान्त को व्यय के लिये धन निकालने के उद्देश्य से विनियोग अधिनियम को अवश्य ही पारित करना होगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** विनियोग अधिनियम को तो अनिवार्य रूप से पारित करना होगा किन्तु लेखानुदान के सम्बन्ध में प्रत्येक मंत्रिमंडल को इसकी स्वतंत्रता रहेगी कि वह उनकी मांग करे अथवा न करे। यदि कोई मंत्रिमंडल लेखानुदान के रूप में धन प्राप्त करना चाहे तो वह विधान मंडल से इसकी मांग कर सकता है।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय:** यदि असम का अथवा किसी प्रान्त का मंत्रिमंडल उसी प्रथा का अनुसरण करना चाहता है जिसका अनुसरण वह अभी तक करता आया है और राज्यपाल से प्रमाण-पत्र प्राप्त करना चाहता है तो क्या उसे इसकी स्वतंत्रता होगी?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अब राज्यपाल से प्रमाण-पत्र प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** इससे प्रक्रिया में कोई अन्तर न आयेगा।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय:** अन्तर यह आयेगा कि अधिक समय लगेगा। मेरे विचार से इसकी आवश्यकता न पड़ेगी। समय अधिक लगने से लोकधन नष्ट होगा क्योंकि विधान मंडल ऐसे समय में भी सत्रस्थ रहेगा जब उसके सत्रस्थ रहने की कोई आवश्यकता न होगी। केन्द्र में इस व्यवस्था की आवश्यकता हो सकती है परन्तु मेरे विचार से सभी प्रान्तों को इसकी आवश्यकता न होगी। प्रान्तों को इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वे वर्तमान प्रणाली का अनुसरण करें अथवा केन्द्र के लिये प्रस्तावित प्रणाली का अनुसरण करें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि सभा ने डा. अम्बेडकर से एक संकेत पाया और केन्द्र के तथा प्रान्तों के वित्तीय उपबंधों में मसौदा समिति ने जो परिवर्तन किये हैं उन पर उनकी स्पष्ट व्याख्या सुनकर उसने सारी योजना पर पूर्ण रूप से विचार-विमर्श किया है। अभी हमने उन उपबंधों को नहीं उठाया है जिनमें अधिक सारभूत परिवर्तन किये गये हैं और मुझे आशा है कि जब विभिन्न खंडों पर विचार किया जायेगा तो इन तर्कों को फिर नहीं दुहराया जायेगा क्योंकि अब सभा इस योजना के सभी अंगों पर पूर्ण रूप से विचार कर चुकी है। मुझे यह देख कर भी प्रसन्नता हुई कि इस तथाकथित नई योजना का मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा तथा प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने बड़े उत्साह से समर्थन किया है। मेरी यह धारणा है कि उन्होंने इन नये संशोधनों के आशय को ठीक-ठीक समझा है और वे जानते हैं कि उनमें वे तत्त्व सन्निहित हैं जिनका संसद चाहे तो विकास हो सकता है और इसके फलस्वरूप लोक-प्रतिनिधि कार्यपालिका के व्यय पर प्रभावपूर्ण ढंग से नियंत्रण रख सकते हैं। मैं यह बताना चाहता हूं कि इन परिवर्तनों को करने में मसौदा-समिति का उद्देश्य यही था।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

मेरे माननीय मित्र डा. देशमुख ने जो भाषण दिये तथा पंडित जगतनारायण लाल ने जो छोटा सा भाषण दिया उसे भी मैंने ध्यानपूर्वक तथा आदरपूर्वक सुना। जहां तक डा. देशमुख की आलोचना का सम्बन्ध है उससे पूर्व स्थिति से उनके प्रेम तथा डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित नवीन उपबन्धों के विरुद्ध उनकी आपत्ति का परिचय मिलता है। वे समझते हैं कि पूर्व स्थिति को बनाये रखने में कोई हानि न होगी और यह चाहते हैं कि भारत सरकार का राजस्व भारत का लोक-राजस्व ही कहा जाये। वे समझते हैं कि नवीन उपबंधों में कोई विशेष लाभप्रद बात नहीं है। इसके विपरीत उनका विचार यह है कि ''संचित-निधि'' और ''आकस्मिकता-निधि'' शब्दों को प्रविष्ट करने से बहुत हानि होगी। यदि डा. अम्बेडकर की व्याख्या के पश्चात् भी उनकी यही धारणा है तो मैं उनके मत को परिवर्तित करने का प्रयास न करूंगा। यदि वे डा. अम्बेडकर के आशय को ठीक समझे होते तो वे यह अनुभव करते कि 'संचित-निधि' शब्दों को स्थान देकर केवल नाम में परिवर्तन किया गया है क्योंकि इस समय जब कि हम अपने लिये एक संविधान का निर्माण कर रहे हैं इस नये नाम को रखना आवश्यक है। डा. अम्बेडकर ने इसे स्पष्ट करने के लिये सभा का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था कि अन्य संविधानों में भी इस प्रकार के उपबंध हैं जैसे कि कनाडा के संविधान में इसी निधि के समान एक संचित राजस्व निधि का उल्लेख है और आस्ट्रेलिया के संविधान के अनुच्छेद 81बी में भी संचित राजस्व निधि का उल्लेख हैं। दक्षिण अफ्रीका के संविधान में भी इस निधि का उल्लेख है यद्यपि इसका उल्लेख भिन्न प्रकार से किया गया है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति संचित निधि के इतिहास को, जैसा कि वह इंग्लिस्तान में रहा है, देखना चाहे तो मैं उसे यह बताना चाहता हूं कि हम वहां की संचित निधि के आशय को स्वीकार करने नहीं जा रहे हैं। इंग्लिस्तान में संचित निधि लगभग 1787 में स्थापित की गई और वहां उस समय केवल पूर्व प्रचलित प्रथा में थोड़ा बहुत परिवर्तन कर दिया गया। उसके स्थापित होने के पूर्व अमुक-अमुक करों के धन को अमुक अमुक व्यय शीर्षकों के अधीन जमा किया जाता था। उस समय सारे लोक-लेखे को एक ही योजना के अधीन, अर्थात् संचित-निधि की योजना के अधीन लाया गया और यह निश्चय किया गया कि करों को तत्सम्बन्धी व्यय शीर्षकों के अधीन न दिखाया जाये बल्कि पूरे व्यय को संचित-निधि से धन निकाल कर पूरा किया जाये और विभिन्न शीर्षकों के अधीन दिखाया जाये। इसलिये इसका ऐतिहासिक महत्त्व है किन्तु हमें यह मान्य नहीं है।

डा. अम्बेडकर ने यह ठीक ही कहा है कि जहां तक विधान मंडल का सम्बन्ध है, हमारे शासकों ने लेखे की प्रक्रिया और वित्तीय उपबंधों में परिवर्तन करना चाहा किन्तु उस समय की कार्यपालिका ने इसका बहुत विरोध किया। 1935 के अधिनियम के पारित होने के पूर्व विभिन्न अवसरों पर जो वादानुवाद हुआ था उसे मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा और मैंने यह देखा कि जब कभी प्रक्रिया में परिवर्तन करने की बात कही जाती थी तो उसी प्रकार का तर्क उपस्थित किया जाता था जैसा कि डा. देशमुख ने उपस्थित किया है, अर्थात् यह कि वर्तमान उपबन्धों का प्रयोग ठीक हो रहा है और किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। किन्तु प्रान्तीय आय-व्ययक और केन्द्रीय आय-व्ययक के अपने

अनुभव के आधार पर मैं यह कहना चाहता हूं कि जिस प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है वह संसार में सबसे अधिक विलम्बकारी प्रक्रिया है। जहां तक केन्द्र का सम्बन्ध है, मांगों को विधान मंडल स्वीकार करता है। कुछ पर विचार-विमर्श होता है और कुछ के सम्बन्ध में मुखबन्ध का प्रयोग किया जाता है। इन मांगों का समन्वय एक प्राधिकृत अनुसूची में किया जाता है जो गवर्नर जनरल के हस्तक्षेप के साथ सभा के सम्मुख उपस्थित की जाती है। डा. अम्बेडकर ने ठीक ही कहा है कि नवीन संविधान के अधीन विनियोग विधेयक के लिये उपबंध रख कर इस उत्तरदायित्व को संसद स्वयं स्वीकार करेगी और विभिन्न मांगों को स्वीकार करते समय उस विधेयक में समविष्ट अपने निर्णयों के संक्षिप्त विवरण अथवा समन्वय को प्रामाणिक बनायेगी। प्रान्तों में भी इसी के समान एक प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है और विधान मंडल के सम्मुख एक प्राधिकृत अनुसूची उपस्थित की जाती है। केन्द्र में वित्त-विधेयक पर विचार-विमर्श करते समय वित्तीय प्रशासन तथा सामान्य प्रशासन पर भी विचार-विमर्श किया जाता है क्योंकि केन्द्र में वार्षिक वित्तीय विधेयक उपस्थित किया जाता है और वह इस कारण कि प्रत्येक वर्ष आय कर के प्रस्तावों को प्रस्तुत करना होता है और विधान मंडल को दरों की अनुसूची स्वीकार करनी होती है किन्तु प्रान्तीय विधान मंडलों में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं है। इन नवीन प्रस्तावों में जब मैंने एक प्रान्तीय मंत्री महोदय को दिलचस्पी लेते हुये देखा तो मुझे प्रसन्नता हुई। जहां तक प्रान्तों का सम्बन्ध है वहां सरकार की सामान्य नीति पर उस प्रकार वादानुवाद नहीं होता जैसे कि केन्द्र में वित्त विधेयक पर विचार-विमर्श करते समय होता है। यह हो सकता है कि यदि कोई नवीन कर लगाना हो तो कर सम्बन्धी कोई विधि बनाई जाये और प्राय: इस प्रकार की विधि बनाई जाती है। किन्तु यह प्रान्तीय सरकार के लिये किसी विशेष वर्ष के सम्बन्ध में साधन प्रदान करने के लिये एक समन्वित विवरण के रूप में नहीं होती और इसलिये प्रान्त के वित्तीय प्रशासन अथवा वित्तीय व्यवस्था पर सामान्य रूप से विचार-विमर्श करने के लिये अवसर नहीं मिलता। यदि श्री निकोल्सराय के मतानुसार इन उपबंधों को आवश्यकता पड़ने पर केवल केन्द्र में ही प्रयोग में लाया जाये, और प्रान्तों में प्रयोग में न लाया जाये, तो प्रान्तों में यह बहुत बड़ी कमी बनी रहेगी, जो एक अनुचित बात होगी। जैसा कि डा. अम्बेडकर ने बताया है, हम एक विनियोग विधेयक को स्थान दे रहे हैं। प्रान्तों के लिये हमने वित्त विधेयक की व्यवस्था नहीं की है। यदि कोई प्रान्त चाहे तो यह व्यवस्था कर सकता है।

श्री जगतनारायण लाल की इस आपत्ति के सम्बन्ध में कि सूची संख्या 1 के संशोधन संख्या 5 के शब्दों में, जो पंडित कुंजरू के नाम से है और डा. अम्बेडकर के संशोधन के शब्दों में अन्तर है, मैं उनसे यह कहना चाहता हूं कि वे इन संशोधनों को संदर्भ सहित पढ़ें। हमने प्रस्तावित योजना के प्रत्येक अंग पर विचार किया है परन्तु वास्तव में उसके बहुत थोड़े से विषयों पर विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है। केवल अनुच्छेद 90 के उपखंड 1(ग) और 1(घ) में धन-विधेयक की परिभाषा को परिवर्तित किया गया है। धन-विधेयक की परिभाषा करते समय यह कहना उपयुक्त ही है कि उसका सम्बन्ध संचित-निधि अथवा आकस्मिकता-निधि के धन की सुरक्षा से भी है क्योंकि अन्य कई विषयों की भी गणना की गई है। ''या'' शब्द का प्रयोग संदर्भ को देखते हुए उपयुक्त है तथा ''और'' शब्द को स्थान देने की आवश्यकता नहीं है।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

इस अवसर पर मैं एक ही बात पर जोर देना चाहता हूं। इस योजना में दो बातों के अतिरिक्त अन्य कोई बात बन्धनकारी नहीं है। एक भारत के लोक-राजस्व के नाम को बदलने के सम्बन्ध में है। जहां तक लोक-राजस्व का सम्बन्ध है, यदि उसका नाम केन्द्र में बदला जाता है तो प्रान्तों में भी उसका नाम बदलना होगा। दूसरी बात यह है कि इस व्यवस्था के स्थान पर कि गवर्नर जनरल अथवा राष्ट्रपति केन्द्रीय विधान मंडल में अथवा प्रान्तीय विधान मंडल में राज्यपाल एक प्राधिकृत अनुसूची उपस्थित करे कि हम विनियोग विधेयक की व्यवस्था को स्वीकार कर रहे हैं। इस विधेयक को संसद अथवा कोई विधान मंडल पारित करेगा। अन्य उपबंधों को स्वेच्छा से स्वीकार किया जा सकता है। यदि कोई प्रान्तीय सरकार विधान मंडल की सहमति से 31 मार्च तक अपने आय-व्ययक को पारित करना चाहे तो इन संशोधनों में कोई भी ऐसी बात नहीं है जिससे उसके मार्ग में बाधा पड़े। यदि श्री निकोल्सराय चाहते हैं कि उनका प्रान्त वर्तमान प्रथा का ही अनुसरण करे तो उसे इसकी स्वतंत्रता है। उसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह इस प्रणाली को अवश्य ही बदले। यदि उनके प्रान्त के विधान मंडल का यह मत हो कि वह इन क्षमता प्रदायक उपबंधों से लाभ नहीं उठायेगा और आय-व्ययक को 31 मार्च तक स्वीकार कर लेगा तथा सरकार से यह आशा करेगा कि वह विनियोग-विधेयक उपस्थित करे और उसे भी 31 मार्च तक स्वीकार कर लेगा, तो उसे इसकी स्वतंत्रता है। अनुच्छेद 95 के सम्बन्ध में हमने जो संशोधन उपस्थित किया है उसमें लेखानुदान की व्यवस्था को स्थान दिया है, जिससे यदि संसद अथवा किसी राज्य का विधान मंडल चाहे तो आय-व्ययक को किसी एक दिन पारित न करके कुछ समय पश्चात् पारित कर सकता है।

सभा यह प्रश्न उठा सकती है कि आय-व्ययक पर कितने दिन तक विचार-विमर्श होता रहेगा। यह प्रश्न उठाया जा सकता है। किन्तु हम संसद को अथवा विधान मंडल को इसकी स्वतंत्रता देना चाहते हैं कि वह इसका निर्णय करे कि वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने के पश्चात् आय-व्ययक पर विचार-विमर्श करने के लिये कितने दिन अलग रखे जायें। इस उद्देश्य से हमने एक क्षमता प्रदायक उपबंध अर्थात् अनुच्छेद 98 (क) रखा है, जिसकी चर्चा डा. अम्बेडकर कर चुके हैं। उसमें यह उपबन्धित किया गया है कि संसद वित्तीय प्रक्रिया के सम्बन्ध में कोई भी विधि बना सकती है। वह अगस्त में आय-व्ययक को पारित करने की किसी विधि को निश्चित करके इंग्लिस्तान की प्रणाली का अनुसरण कर सकती है, अथवा इस समय को एक महीने बढ़ा सकती है। भविष्य की संसद को इसकी स्वतंत्रता दी गई है कि वह इस परिवर्तन को करे अथवा न करें और वर्तमान व्यवस्था को रहने दे। प्रान्तों के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। इसलिये लेखानुदान के सम्बन्ध में जो उपबंध है वह क्षमता-प्रदायक उपबंध हैं और यह अनिवार्य नहीं हैं कि इसे स्वीकार ही किया जाये। इससे संसद के लिये वह आवश्यक नहीं रह जाता कि निश्चित तिथि तक ही कार्य समाप्त कर दिया जाये। इस सभा के सदस्यों को विदित होगा कि फ्रांस की संसद में आय-व्ययक की प्रक्रिया के सम्बन्ध में इसी प्रकार की सख्ती है और पिछले वर्ष कुछ राजनैतिक कठिनाइयों के उपस्थित हो जाने के कारण उन्हें संसद भवन की घड़ी को निश्चित समय के पूर्व बन्द कर देना पड़ा। अन्तिम दिन रात के

बारह बजने के कुछ मिनट पूर्व घड़ी बन्द कर दी गई। यह एक अनर्गल सी बात है कि चूंकि किसी की घड़ी बन्द हो जाये इसलिये वह यह समझने लगे कि संसार की गति भी रुक गई है। इस प्रकार के उपायों को अपनाने की आवश्यकता न होगी और नई योजना इतनी लचीली होगी कि संसद उपयुक्त प्रबंध कर सकेगी। लेखानुदान के सम्बन्ध में बहुत कुछ उसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जायेगा जिसका कि विनियोग विधेयक के सम्बन्ध में अनुसरण किया जायेगा। संसद विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में विभिन्न प्रक्रियाओं को विधि द्वारा निर्धारित कर सकती है। वह यह निर्धारित कर सकती है कि कार्यपालिका को दो महीने के व्यय के लिये लेखानुदान की अथवा संचित विधेयक संख्या 1 को पारित करने की मांग करनी चाहिये। उसमें आय-व्ययक की मांग के सभी शीर्षकों का उल्लेख होना चाहिये और निश्चित अवधि के लिये उसी के अनुपात से धनराशि की मांग करनी चाहिये। उसमें यह कहा जा सकता है कि इस अवधि में कोई नया व्यय नहीं किया जायेगा। संसद इन सभी शर्त्तों को निर्धारित कर सकती है अथवा वह यह निर्णय कर सकती है कि वह नई योजना को स्वीकार न करेगी और वर्तमान प्रथा का ही अनुसरण करेगी।

अन्य आपत्तियों के सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि इस नई योजना के लिये जो लोभ उत्तरदायी हैं उनमें से अधिकांश ने किसी भी ऐसे परिवर्तन को करने में बहुत सावधानी दिखाई जिसका विस्तृत प्रभाव हो सकता था। इसलिये हमारी यह धारणा है कि हमने कोई ऐसी बात प्रविष्ट नहीं की है जो पहले समाविष्ट न थी। केन्द्र में संसद अथवा प्रान्तों में विधान मंडल अपनी पहले की प्रक्रिया में कोई नई बात प्रविष्ट करने के लिये बाध्य नहीं है और यदि वे चाहे तो अपनी वर्तमान योजना का ही अनुसरण कर सकते हैं। यदि संसद नियंत्रण रखना चाहे, और उसे तथा राज्यों के विधान मंडलों को नियंत्रण रखना ही चाहिये तो इन संशोधनों द्वारा संसद का तथा राज्य के विधान मंडलों को जो शक्ति प्रदान की गई है उससे वे लाभ उठा सकते हैं और इस प्रकार का नियंत्रण रख सकते हैं। किसी सुचारु लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली में इस प्रकार का नियंत्रण होना ही चाहिये। मुझसे पहले बोलने वाले सदस्यों ने जो प्रश्न उठाये थे उनका पूर्ण रूप से नहीं तो कम से कम आंशिक रूप से मैंने उत्तर देने का प्रयास किया है। अवशिष्ट प्रश्नों का उत्तर सम्भवत: डा. अम्बेडकर अपने भाषण में अन्त में देंगे। इसके पश्चात् जहां तक इस योजना में सन्निहित सामान्य सिद्धांतों का सम्बन्ध है उन पर मेरे विचार से विचार-विमर्श करने की आवश्यकता न रहेगी। श्रीमान्, मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार से श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो कुछ कहा है उससे अधिक और कुछ कहने से कुछ लाभ न होगा। विभिन्न संशोधनों पर मैं अपने विचार उसी समय व्यक्त करूंगा जब वे उपस्थित किये जायेंगे, क्योंकि मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वही तर्क फिर दुहराये जायेंगे।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) में से 'only' (केवल) शब्द निकाल दिया जाये।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (क) के अन्त में 'duty, charge, rate, levy or any other form of revenue, income, or receipt by Governments or of expenditure by Government' (शुल्क, भारित व्यय, दर, उद्गृहीत राशि अथवा अन्य किसी प्रकार का राजस्व, आय अथवा सरकारों की पावती अथवा सरकार का व्यय)' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (ङ) में 'the increasing of this amount of' (की धनराशि को बढ़ाना) शब्दों के स्थान में 'varying the amount of or abolishing' (की धनराशि को परिवर्तित करना अथवा उसका उत्सादन करना) शब्द रखे जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (ग) और (घ) के स्थान में निम्नलिखित उपखंड रखे जायें:

'(c) the custody of the Consolidated Fund or the Contingency Fund of India, the payment of moneys into or the withdrawal of moneys from any such fund;

(d) the appropriation of moneys out of the Consolidated Fund of India;'

[(ग) भारत की संचित निधि अथवा आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा, ऐसी किसी निधि में धन डालना अथवा उसमें से धन निकालना;

(घ) भारत की संचित निधि में से धन का विनियोग;]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 6 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (घ) और (ङ) में 'revenues of India' (भारत का राजस्व) शब्दों के स्थान में 'Consolidated Fund of India' (भारत की संचित निधि) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 90 पर, संशोधित रूप में, मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 90, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 90, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 91 पहले पारित हो चुका है। इसलिये अब सभा अनुच्छेद 92 पर विचार करेगी।

अनुच्छेद 92

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 92 के खंड (1) में 'President' (राष्ट्रपति) शब्द के बाद निम्नलिखित रखा जाये:

'or the Finance Minister acting under the authority of the President, specially given for the purpose' (अथवा वित्त-मंत्री जो राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त प्राधिकार से, जो इस उद्देश्य से विशेष रूप से प्रदान किया जायेगा, कार्य करेगा); तथा 'both Houses' (दोनों सभाओं) शब्दों के स्थान में 'People's House (लोक सभा) शब्द रखे जायें और 'estimated receipts' (प्राक्कलित पावती) शब्दों के बाद निम्नलिखित प्रविष्ट किया जाये:

'On revenue account as well as from borrowed moneys, or transfer of sums from other accounts 'to Revenue Account' (राजस्व लेखे से अथवा उधार लिये हुये धन से, अथवा अन्य लेखों से धन-राशियों का राजस्व लेखें में संक्रमण।)''

श्रीमान्, इस संशोधन में दो बातों का उल्लेख है और मैं उन्हें सभा के सामने रखना चाहता हूं। पहले तो जिस रूप में यह खंड है, इसके अनुसार आय-व्ययक राष्ट्रपति द्वारा ही अथवा राष्ट्रपति की ओर से ही संसद में उपस्थित किया जायेगा। सभा ने इस सिद्धांत को स्वीकार किया है कि भारत सरकार के सभी कार्य हमेशा राष्ट्रपति के नाम से किये जायेंगे। इसे स्वीकार करते हुये भी यह उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है कि राष्ट्रपति के प्राधिकार से संसद में आय-व्ययक उपस्थित किया जाये। इस विषय के सम्बन्ध में उसी मंत्री को कार्य करना चाहिये, जिसने देश के वित्त की व्यवस्था करने का भार उठाया हो। वह सभा में उपस्थित रहेगा और सभा के तथा देश के वित्तीय प्रशासन के सम्पर्क में रहेगा। मेरे विचार से यह उचित नहीं है कि इस अनुच्छेद में इस विकल्प को स्थान दिया जाये कि कोई अन्य मंत्री इस कार्य को लेकर सभा के सम्मुख उपस्थित हो सकता है। इसकी आज्ञा न होनी चाहिये।

[प्रो. के.टी. शाह]

इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में पहले जिस सिद्धांत को स्वीकार किया गया है और जिसके अनुसार देश का शासन राष्ट्रपति के नाम से किया जायेगा, उसके आशय को स्वीकार करते हुये भी मैंने इस अनुच्छेद में कुछ सुधार करने का प्रयास किया है और यह प्रस्ताव किया है कि यद्यपि वित्त मंत्री प्राधिकार प्राप्त करके कार्य करे किन्तु आय-व्ययक का भार वह स्वयं वहन करे। मेरी अपनी सम्मति यह है कि इस प्रकार के कार्यों से राष्ट्रपति का कोई सम्बन्ध न होना चाहिये। वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में संसद को ही पूर्ण प्रभुत्व तथा प्राधिकार प्राप्त होना चाहिये। किन्तु मैं पहले के अनुच्छेद में सन्निहित सिद्धांत अथवा उसके आशय का खंडन नहीं करना चाहता और इसलिये मैंने यह उपबंध रखा है कि इस विषय के सम्बन्ध में वित्त मंत्री को राष्ट्रपति से स्पष्ट शब्दों में प्राधिकार प्राप्त होना चाहिये और उसके पश्चात् उसे लोक सभा में इस सम्बन्ध में जो भी आवश्यक कार्य हो करना चाहिये।

यह समझा जा सकता है कि यह विषय प्रक्रिया से अथवा नाम रखने से सम्बन्ध रखता है। किन्तु मेरी यह धारणा है कि इसमें संसदात्मक लोकतंत्र तथा उत्तरदायी शासन का सिद्धांत सन्निहित है क्योंकि इसमें इसका प्रतिषेध है कि कार्यपालिका के प्रमुख का परोक्ष रूप से भी इस प्रकार के विषयों में हाथ हो।

मेरे संशोधन में जो दूसरा सिद्धांत सन्निहित है उसका महत्त्व अधिक है और वह आय-व्ययक के सम्बन्ध में...।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। इसे दृष्टि में रखते हुये कि संघ की कार्यपालिका के कृत्य राष्ट्रपति के नाम से होंगे, क्या यह संशोधन व्यवस्था संगत कहा जा सकता है? वित्त मंत्री का कोई उल्लेख नहीं है। संशोधन का आशय यह है कि वित्त मंत्री संसद के सम्मुख विवरण उपस्थित करेगा। यह संविधान की योजना के विरुद्ध है, क्योंकि उसके अधीन सभी कार्य राष्ट्रपति के नाम से किये जायेंगे। जिस संशोधन का यह आशय हो कि वित्त मंत्री को आगे बढ़ना चाहिये वह निरर्थक ही है। अनुच्छेद 42 में यह कहा गया है कि राज्य की कार्यपालिका का प्रमुख राष्ट्रपति होगा।

***अध्यक्ष:** उन्होंने यह कह कर अपना भाषण आरम्भ किया कि वे इस सिद्धांत से परिचित हैं किन्तु उसके रहते हुये भी वित्त मंत्री को भी इस विषय के सम्बन्ध में स्थान मिलना चाहिये।

***प्रो. के.टी. शाह:** दूसरी बात का महत्त्व अधिक है क्योंकि मेरे विचार से इसका निश्चित शब्दों में उल्लेख हो जाना चाहिये कि वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में लोक-सभा का प्रभुत्व है और इन विषयों के सम्बन्ध में दोनों सभाओं को समान शक्ति प्राप्त नहीं है। जिस रूप में यह अनुच्छेद है इससे यह आशय प्रकट होता है कि वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में संसद की दोनों सभाओं की समान स्थिति है, किन्तु यह संविधान के आधार पर ही आघात करता है। इसलिये इस संशोधन द्वारा मैंने यह सुझाव रखा है कि वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में केवल लोक-सभा को ही निर्णय करने का अधिकार होना चाहिये। यदि आवश्यक हो तो दूसरी सभा को उनके सम्बन्ध में केवल सूचित किया जाये और उसी प्रकार सूचित किया जाये जैसे जनसाधारण को तथा सरकार के विभिन्न विभागों को

सूचित किया जाता है और आय-व्ययक की प्रतियां दी जाती हैं। सांविधानिक अधिकार की दृष्टि से तथा सांविधानिक आवश्यकताओं अथवा नीति की दृष्टि से मेरे विचार से केवल लोक सभा का ही वित्त से सम्बन्ध होना चाहिये और उसी को उसमें दिलचस्पी दिखानी चाहिये। यही उचित व्यवस्था होगी। यदि आप यह चाहते हैं कि वित्तीय विषयों में लोक प्रतिनिधियों का ही असंदिग्ध रूप से प्रभुत्व हो, तो इस संशोधन का विरोध न होना चाहिये क्योंकि इसके अनुसार आय-व्ययक केवल लोक सभा में ही प्रस्तुत किया जायेगा। साधारण विधि के सम्बन्ध में दूसरी सभा संयुक्त रूप से अथवा समान रूप से कार्य कर सकती है और वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में भी कुछ रूप भेद का सुझाव रख सकती है परन्तु यह न होना चाहिये कि उसी का निर्णय अन्तिम निर्णय हो। इस सम्बन्ध में कोई भी सन्देह न रखना चाहिये कि वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में लोक सभा का ही प्रभुत्व होगा और मुख्यत: लोक प्रतिनिधियों को ही उनके सम्बन्ध में निर्णय करने का प्राधिकार प्राप्त होगा।

इसलिये मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं और यह बताना चाहता हूं कि इसका प्रभाव केवल राजस्व पर ही न पड़ेगा बल्कि देश की सेवा पर व्यय किये जाने वाले सभी प्रकार के धन पर पड़ेगा, चाहे वह उधार ली हुई निधि से निकाला जाये अथवा अन्य निधियों से संक्रमिक किया जाये।

मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि जिस संशोधन को मैं उपस्थित कर रहा हूं वह संविधान के उन सिद्धांतों के अनुरूप ही है जिन्हें हमने विकसित किया है और इसलिये सभा को उसे स्वीकार कर लेना चाहिये।

***अध्यक्ष:** क्या आप अन्य संशोधनों को भी उपस्थित करने जा रहे हैं? संशोधन संख्या 1694 सम्मिलित किया जा चुका है।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान् मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 92 के खंड (1) में 'expenditure' (व्यय) शब्द के बाद 'whether charged upon the revenue of India's, or on other account' (चाहे वह भारत के राजस्व पर भारित हो अथवा किसी अन्य लेखे पर) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

श्रीमान्, यह संशोधन की संगति उसी तर्क से है जिसे मैंने उपस्थित किया है। देश की सेवाओं में व्यय होने वाले धन के लेखों में लोक सभा में प्रस्तुत करते समय कोई विभेद न किया जाना चाहिये चाहे वे राजस्व पर भारित हों अथवा संचित निधि पर अथवा साधारण राजस्व लेखे पर। मुझे आशा है कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** आपके नाम से दो संशोधन और हैं अर्थात् संशोधन संख्या 1697 और 1698।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं उन्हें उपस्थित करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** आप उन्हें शुक्रवार को उपस्थित कर सकते हैं। सभा शुक्रवार के प्रात: आठ बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा शुक्रवार, 10 जून 1949 के प्रात: आठ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।